❀ श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः ❀

❀ | स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे । | ❀

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः

नोत्पादयेद् यदि रतिं केवलश्रम एवहि ।

❀ | अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मासुप्रसीदति ॥ | ❀

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक । भक्ति अधोक्षज की अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥

सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर । किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो,श्रम व्यर्थ सभी,केवल बंधनकर॥

वर्ष ७ | गौराब्द ४७५, मास—पद्मनाभ २३, वार-प्रद्युम्न मङ्गलवार, ३० अश्विन, सम्वत् २०१८, १७ अक्टूबर १९६१ | संख्या ५

श्रीकार्त्तिकव्रते विधिनिषेधाः

[विषयः]

कार्त्तिकस्य व्रतानीह तस्यां कुर्यादतन्द्रितः ।
नित्यं जागरणायान्ये यामे रात्रेः समुत्थितः ।
शुचिर्भूत्वा प्रबोध्याथ स्तोत्रैर्नीराजयेत् प्रभुम् ॥८१॥

निशम्य वैष्णवान् धर्म्मान् वैष्णवैः सह हर्षितः ।
कृत्वा गीतादिकं प्रातर्देवं नीराजयेत् प्रभुम् ॥८२॥

नित्यं वैष्णवसंगत्या सेवेत भगवत्कथां ।
सर्पिषाहर्निशं दीपं तिलतैलेन चार्चयेत् ।
विशेषतश्च नैवेद्यान्यर्पयेदाचरेत्तथा ।
प्राणायांश्च यथाशक्त्या एकभक्तादिकं व्रतम् ॥८१॥

दामोदराष्टकं नाम स्तोत्रं दामोदरार्चनं ।
नित्यं दामोदराकर्षि पठेत् सत्यव्रतोदितम् ॥९६॥

[निषेधाः]

कार्त्तिके तु विशेषेण राजमाषांश्च भक्षयन् ।
निष्पावान् मुनिशार्दूल यावदाहूतनारकी ॥

कलिङ्गानि पटोलानि वृन्ताकं सन्धितानि च ।
न त्यजेत् कार्त्तिके मासि यावदाहूतनारकी ॥९०॥

तैलाभ्यङ्गं तथा शय्यां परान्नं कांस्यभोजनं ।
कार्त्तिकके वर्जयेद्यस्तु परिपूर्णव्रती भवेत् ॥

कार्त्तिके वर्ज्जयेत्तैलं कार्त्तिके वर्ज्जयेन्मधु ।
कार्त्तिके वर्ज्जयेत् कास्यं कार्त्तिके शुक्त-सन्धितम्॥

न मात्स्यं भक्षयेन्मांसं न कौर्मं नान्यदेव हि ।
चाण्डालः स भवेत् सुभ्रु कार्त्तिके मांसभक्षणात् ॥९३॥

—श्रीहरिभक्तिविलासस्य पञ्चदशविलासे

अनुवाद—

कार्त्तिक मासमें प्रतिदिन रातके अन्तिम पहरमें जागरणके लिये बिछौनेसे उठ कर शुचिपूर्वक स्तोत्र-पाठ द्वारा प्रभुको जागरित कर उनकी आरती उतारनी चाहिए ॥८१॥

वैष्णव धर्म श्रवण कर वैष्णवोंके साथ आनन्द-पूर्वक कीर्तन करके प्रभुकी आरती करनी चाहिए॥८२॥

कार्त्तिक मासमें वैष्णवोंके साथ प्रतिदिन भगवानकी लीला-कथाओंका सेवन करना चाहिए तथा दिन-रात घृत या तिल-तैल के प्रदीपसे अर्चन करना चाहिए। दूसरे-दूसरे मासोंकी अपेक्षा कार्त्तिक मासमें विशेष रूपमें नैवेद्य आदि अर्पण करना चाहिए तथा विशेष रूपमें प्रणाम आदि करके यथाशक्ति दिनरातमें केवल एक बार भोजन करना चाहिए ॥८७॥

कार्त्तिक मासमें भगवान् दामोदरका अर्चन-पूजनपूर्वक सत्यव्रत नामक मुनि द्वारा कहे गये 'दामोदराष्टक' नामक स्तोत्रका प्रतिदिन पाठ करना चाहिए। इसीके द्वारा दामोदर वशीभूत होते हैं॥९६॥

हे मुनिश्रेष्ठ! जो व्यक्ति विशेष रूपसे कार्त्तिक मासमें बरबटी और सीम भोजन करते हैं, वे महा-प्रलय तक नरकमें पड़ेंगे ॥

जो मनुष्य कार्त्तिक मासमें कलमी शाक, परवल, बैंगन और मद्य आदिका वर्जन नहीं करते, वे महा-प्रलय तक नरकमें वास करेंगे ॥९८॥

जो व्यक्ति कार्त्तिक मासमें तैल-मर्दन, शय्या, बासी अन्न, और काँसेके बर्तनमें भोजन—इन सबका वर्जन करते हैं, उनका व्रत परिपूर्ण होता है ॥

हे सुन्दरी! कार्त्तिक मासमें तैल, मधु, बासी भोजन, काँसेके पात्रमें भोजन, मद्य, मछली, कछुवा, मांस और दूसरे-दूसरे समस्त आमिष (मांस जातीय) द्रव्य—इनका भोजन नहीं करना चाहिए। जो व्यक्ति कार्त्तिक मासमें मांस खाता है, वह चाण्डाल होता है।

मानव सर्वश्रेष्ठ क्यों है ?

पशुओंसे मनुष्यकी तुलना

समस्त प्राणियोंमें मनुष्य श्रेष्ठ है। परन्तु मनुष्य श्रेष्ठ क्यों है ?—इस पर विचार करने पर हम देख पाते हैं कि हरितोषक—भगवान्‌की सेवाकी प्रवृत्तिके कारण ही मनुष्य सर्वश्रेष्ठ प्राणी माना गया है। यदि कहा जाय कि मनुष्य विचार शक्ति सम्पन्न होनेके कारण ही श्रेष्ठ है, तो यह बात विचारकी कसौटी पर खरी नहीं उतरती। क्योंकि अनेक समय बहुतसे पशु-पक्षियोंमें भी प्रचुर विचार शक्ति लक्ष्य की जाती है। परन्तु इनमें विचार शक्ति रहनेपर भी दूरदर्शनका अभाव होता है। यही दूरदर्शिता हरितोषनमें—भगवत्सेवा प्रवृत्तिमें बदल जानेपर ही उसकी सार्थकता है। आहार, निद्रा, भय और मैथुन आदि कार्य पशु और मनुष्यमें समान-रूपसे हैं। पशुको डंडा दिखलानेसे वह डर जाता है, उसके शरीर पर प्यारसे हाथ फेरने पर वह सन्तुष्ट होता है। परन्तु पशु पूर्वकी बात नहीं जानते अथवा आगे होनेवाली बातका भी अनुमान नहीं लगा सकते। अक्षरात्मक या शब्दात्मक वस्तु (ग्रन्थ आदि) की सहायतासे पूर्वकालकी अभिज्ञताओंसे लाभ उठानेका पशुओंको अधिकार नहीं है।

वेदमें 'भजन' और 'पूजन' शब्दोंका उल्लेख

मानव जातिका सबसे प्राचीन ग्रन्थ ऋक्‌संहिता है। उसमें हम पूज्य, पूजक और पूजाके विषयमें उल्लेख पाते हैं। इस संहितामें भिन्न-भिन्न देवताओं-के स्तवोंका संग्रह है। स्तव करनेवाले उस समयके सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति हैं। हम उस आदिम सभ्यताके ग्रन्थ-में 'पूजन' शब्द पाते हैं। अपनेसे श्रेष्ठका पूजन करना चाहिये। आनुगत्य-धर्म ही 'पूजन' है। श्रेष्ठ वस्तु ही पूज्य है। पूजक पूज्यके अधीन या अनुगत होता है और पूजन-क्रिया आनुगत्यसूचक है—ये सभी बातें उक्त संहिता ग्रन्थसे जानी जाती हैं।

मायावाद या बहु-ईश्वरवाद

परवर्त्तीकालके विचारसे बहु-ईश्वरवाद (Poly-theism) या पंचोपासना (Henotheism) का प्रादुर्भाव हुआ जो क्रमशः अहंग्रहोपासना (Pan-theism) का रूप धारण कर लिया। पहले अनेक वृहद्, श्रेष्ठ या पूज्य वस्तुओंको देखकर बहु-देवता पूजाकी सूचना हुई। बहीश्वरवादसे क्रमशः नश्वर विचित्रता (जगत्) में वास करते समय 'अव्यक्त प्रकृतिमें लय' या 'मायावाद' अर्थात् अनेकसे अन्तमें किसी भी एक कल्पित जड़ निर्विशेष अवस्थाको प्राप्त करनेकी चेष्टा जीव हृदयमें उत्पन्न हुई। यही मायावाद है। यह अतीव हेय विचार है।

विष्णुका श्रेष्ठत्व

एक दूसरा भी विचार है। वह यह कि अनेक श्रेष्ठ वस्तु या अनेक देवता पूज्य स्वीकृत होने पर भी वे समस्त श्रेष्ठ देवता जिन्हें सर्वश्रेष्ठ पूज्य समझ कर पूजते हैं, जिनके समान कोई नहीं है, उनसे बड़ा होनेकी तो बात ही क्या है, ऋङ्‌मन्त्र उन विष्णुका स्तव इस प्रकार करते हैं।

'ॐ तद्‌विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः, दिवीव चक्षुराततम्।' अर्थात् सूरिगण (मुक्तपुरुष-अथवा श्रेष्ठ देवगण) ही उन विष्णुके परम नित्य-पदका नित्यकाल दर्शन करते हैं या उनकी नित्य सेवा करते हैं।

ऋक् संहितामें कहीं भी ऐसे किसी देवताका उल्लेख नहीं मिलता, जो विष्णुके परमपदसे श्रेष्ठ

हो। विभिन्न देवताओंकी पूजा तथा अपनेसे श्रेष्ठ, धनी, मानी, बलवान, पण्डित और कुलीन पुरुषोंको सम्मान प्रदान करना—यह दोषकी बात नहीं है। परन्तु उनकी स्वतन्त्र-उपासना अर्थात् उनको भगवानसे स्वतन्त्र एक-एक ईश्वर जानकर अथवा उनको भगवानका दास या वैष्णव नहीं मानकर उनकी पूजा ही दूषणीय है। उसके द्वारा 'एकमेवाद्वितीयम्' मन्त्रके प्रतिपाद्य अद्वय वस्तुकी सेवा नहीं होती, बल्कि वेदान्त विरोधी बहु-ईश्वरवाद ही स्वीकृत होता है।

विष्णुपूजा और इतर देवपूजामें अन्तर

तत्त्व वस्तु एक और अद्वितीय है। सर्वश्रेष्ठ-तत्त्व क्या है—इस विषयमें स्वयं भगवान श्रीगौर सुन्दरने ब्रह्मसंहिता-ग्रन्थसे जीवोंको उपदेश दिया है—

"ईश्वरःपरमः कृष्णः सच्चिदानन्द विग्रहः।
अनादिरादिर्गोविन्दः सर्वकारणकारणम्॥

श्रीव्यासदेवने भी पद्मपुराणमें इसीको दुहराया है—

"विष्णु सर्वेश्वरेशे तदितरसमधीर्यस्य वा नारकी सः।"

अर्थात् जो लोग समस्त ईश्वरोंके भी ईश्वर—सर्वेश्वरेश्वर विष्णु को और उनके अधीन तत्त्वोंको समान दर्शन करते हैं, उनमें वास्तव ज्ञानका अभाव है, ऐसा समझना चाहिए। वास्तव अद्वय पूज्यवस्तुमें शक्तिमत्ताका अभाव नहीं होता। जो लोग विष्णुके अतिरिक्त दूसरे देवताओंकी श्रद्धापूर्वक पूजा करते हैं, वह किसी न किसी रूप भगवानकी ही पूजा है। परन्तु उनकी वह पूजा अविधि पूर्वक है—

"येऽप्यन्यदेवताभक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम्॥"

विष्णु ही परम हैं। वे सब देवताओंके मूल हैं। दूसरे समस्त देवता उन अद्वयतत्त्व वस्तुके अधीन तत्त्व होनेके कारण उनके प्रति जो सम्मान प्रदर्शित होता है, वह फलतः अद्वय वस्तुको ही प्राप्त होता है; परन्तु पूजकका यह कार्य अवैध है। जिस प्रकार एक वृक्षको ले लीजिये; उसकी डालियाँ और पत्तियाँ वृक्ष ही हैं; फिर भी जड़—मूल तत्त्व है; पत्तियाँ और डालियाँ अधीन तत्त्व हैं। यदि पानीके अभाव में पेड़ सूख रहा हो, तो डालियों और पत्तियोंमें दिया हुआ जल भी पेड़को ही प्राप्त है, फिर भी वह कार्य अवैध है; जड़में दिया हुआ जल ही वैध है। क्योंकि जड़ उस पानीको यथायोग्य रूपमें डालियों और पत्तों—सबमें वितरण कर देता है। उसी प्रकार सर्वेश्वर विष्णुकी पूजा ही वैध है। इसके अतिरिक्त दूसरे देवताओंकी स्वतंत्ररूपमें पूजा अवैध है। वैसी पूजासे पूजकका कदापि मङ्गल नहीं हो सकता। सभी जिनकी पूजा करते हैं, वह अद्वयतत्त्व ही श्रीभगवान हैं। किसी गृहपतिके दरवाजे पर खड़े हुए चौकीदारको ही घरका मालिक समझ लेना बुद्धिमानी नहीं है—ऐसा समझना भूल है या अविधि है। वास्तव वस्तुकी पूजा ही यथार्थ पूजा है या विधिपूर्वक पूजा है।

वैष्णवका मानदधर्म और देवपूजा

श्रीगौरसुन्दरने हमें मानद-धर्मकी सुन्दररूपसे शिक्षा दी है। यदि हममें मानद-धर्मका अभाव है तो बाहरी जगतकी वस्तुओंकी कामनाके कारण हृदय मत्सरतासे पूर्ण होनेके कारण हमारी जिह्वा पर श्रीहरि-संकीर्तन उदित नहीं होता। वैष्णव—निर्मत्सर होते हैं, वे मानद होते हैं, अतएव अन्यान्य देवता या जागतिक श्रेष्ठ वस्तुओंको यथायोग्य सम्मान प्रदान करनेमें कभी भी नहीं पिछड़ते हैं। वे तो सबमें अपने इष्टदेव श्रीकृष्णका निवास है—ऐसा जानकर समस्त देवताओं और जीवोंको यथायोग्य सम्मान प्रदान करते हैं। परन्तु यह सत्य है कि वे कृष्णका सम्बन्ध छोड़कर किसीको सम्मान प्रदान करनेके पक्षपाती नहीं हैं। बाह्य जगतके कर्मी लोग वैसा

तात्कालिक सम्मान देने पर भी वह उनके मत्सर हृदय-का सामयिक उच्छ्वास और कपटतामात्र है।

विष्णुकी सर्वश्रेष्ठता और परमेश्वरत्व

यदि हम ऋग्वेदके स्तवके प्रति विशेषरूपसे विचार करते हैं, तो देख पाते है कि "ॐतद्विष्णोः परमं पदम्"—यह उपदेश ही मूल तथ्य है। यद्यपि दूसरे देवतागण विष्णुके साथ देव-पर्यायमें गिने गये हैं, तथापि विष्णुका तुरीय पद ही परम पद है और वही सूरियों द्वारा नित्य सेवनीय है। पुनः वे देवता परतत्त्व अद्वय विष्णुकी ही विभिन्न शक्तियाँ होनेके कारण उनकी देव-पर्यायमें गणना होनी कोई अयुक्ति-सङ्गत नहीं है। परन्तु यह सर्वदा स्मरण रखना चाहिए कि कोई भी स्वतन्त्र तत्त्व नहीं हैं। हम अनेक समय "मातापिताको "प्रत्यक्ष देवता", अधिकतर शौर्य-वीर्य सम्पन्न व्यक्तिको 'देवता' के नामसे पुकारते हैं; परन्तु क्या वे ही परमेश्वर हैं? क्या उनसे बड़ा उनके ऊपर और कोई ईश्वर नहीं है?—ऐसा विचार करने पर हम देख पाते हैं कि वे परमेश्वर नहीं हैं। वे विष्णुके अणु अंश-तत्त्व हैं। उनमें भगवान्‌की कोई विभूति या गुण बिन्दु-बिन्दु परिमाणमें प्रकाशित है; इसलिये वे श्रद्धाके पात्र हैं। परन्तु असमोर्द्ध परम-तत्त्व-वस्तु भगवान्‌की भाँति कोई भी एकच्छत्र श्रेष्ठ या परम स्वतन्त्र नहीं है। इसीलिये विभिन्न देवता लोग प्राकृत बुद्धिसम्पन्न साधारण लोगों द्वारा परम-तत्त्वके रूपमें पूजित होने पर भी सूरिगण अर्थात् पूर्ण-प्रज्ञ व्यक्ति विष्णुके तुरीय पदको ही परम पद मानकर उनकी सेवा करते हैं। इसीलिये पूर्णप्रज्ञ श्रीमन्मध्वाचार्यचरणने प्राचीनतम वेदमंत्ररूप शब्द प्रमाण—वेद मंत्रोंद्वारा विष्णुको ही परमतत्त्व प्रमाणित किया है।

प्राकृत धारणाकी दौड़

अविकुण्ठ और अव्यापक अर्थात् प्राकृत सीमा-युक्त पदार्थोंका अपनी प्राकृत इन्द्रियोंद्वारा दर्शन करते-करते हमारी ऐसी कुबुद्धि हो गयी है कि हम वैसी ही बुद्धिका प्रयोग वैकुण्ठ या सर्वव्यापक वस्तु—प्राकृत मन-बुद्धिकी धारणासे अतीत अधोक्षज विष्णु-के ऊपर भी करना चाहते हैं। परन्तु ऐसा असंभव है।

मानवकी श्रेष्ठताका कारण और परिचय

मनुष्य क्यों श्रेष्ठ है? मनुष्य श्रौतपथका आच-रण कर सकता है अर्थात् वह पूर्व-पूर्व महाजनोंके द्वारा प्रदर्शित आचरणोंका विषय श्रवण कर सकता है और उसके अनुसार जीवनका गठन कर सकता है। अनेक जन्म-जन्मान्तरोंके पश्चात् जीव सुदुर्लभ अनित्य किन्तु परमार्थप्रद मनुष्यका जन्म प्राप्त करता है। अतएव भगवत् सेवा ही मनुष्य जन्मका एकमात्र कर्त्तव्य है—उसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। भगवत् ज्ञानको प्राप्त करना ही मनुष्य जीवनका चरमफल है। इस गमनशील जगत्‌में मनुष्य या तो देवत्वकी ओर अग्रसर होगा और नहीं तो पशुत्वकी ओर पतित होगा ही। भगवान्‌की बात दूर रख कर जो मैं यह समझूँ कि मैं नित्य-भगवानका नित्यदास नहीं हूँ, तो वैसे नश्वर 'मैं'का कदापि कल्याण नहीं हो सकता है।

साधुके मुखसे हरिकथा श्रवणके अभावमें ही शरीर और मनका धर्म प्रबल होता है।

हमारे ऐसे कौन बन्धु हैं; जो हरिकथाके दूर्भिक्षसे हमारी रक्षा कर सके? मनुष्य जाति अहङ्कारके अधीन होकर इतनी दूर तक अविवेकी हो गयी है कि वह कुसिद्धान्तपूर्ण बातोंको ही सिद्धान्त मानकर उन्हींका प्रचार करनेकी दांभिकता करती है और हिताहित-विवेकके विरुद्ध खड़ी होकर आपात मधुर एवं इन्द्रिय-सुखकर बातोंको ही अङ्गीकार कर स्वयं अपने पैरोंपर ही कुठाराघात करती है। यदि हम सत्सङ्गके प्रभावसे पशु-स्वभाववाले व्यक्तियोंके सङ्गसे दूर रहनेका सुयोग प्राप्त करें, तभी हमारा यथार्थ कल्याण संभव है। मनुष्य कुसङ्गमें पड़ने पर कभी

वह प्राकृत बहादुर (!) बनता है, तो कभी प्राकृत पागल। 'हरिभजनमें ही मनुष्य जीवनकी सार्थकता है और क्षण भरका समय नष्ट किये बिना अभीसे हरिभजन आरम्भ करूँगा'—ऐसा दृढ़ उत्साह और निश्चयताके साथ हमें मनुष्य जीवनके चरम कल्याण-के साधनमें जुट जाना आवश्यक है। यदि हम देर करते हैं तो बहिर्मुख असत् लोग हमें अहितकर परामर्श देनेका सुयोग पा जायेंगे। वे हमारे पास आकर कभी तो यों कहेंगे—'शरीरमाद्यं खलु धर्म-साधनम्', कभी कहेंगे—'स्वदेशकी सेवा करनी ही परमधर्म है' और कभी यह कहेंगे—'जिस ग्राममें निवास कर रहे हो उस ग्राम्यदेवता या समाजको भौतिक साधनोंसे समृद्ध करना ही तुम्हारा धर्म है।' इत्यादि। इस प्रकार देहधर्म और मनोधर्मका उपदेश देकर वे हमारा सर्वनाश करेंगे। उनके मनोहर वचनों को सुनकर हम भी उस समय कहेंगे—'भाई! जब ईश्वरने हमको कुक्कुरदंत (Canine teeth) प्रदान किये हैं, जब इतने पशु-पक्षी, मद्य-मांस और मछली आदि जीव-जन्तुओंकी सृष्टि की है एवं इन सबको हमारे खाद्य और शरीर-पुष्टिके लिये उपयोगी बना कर भेजा है, तब हमलोग इन सबका भक्षण कर अपने शरीरको पुष्ट बनायेंगे और यही ईश्वरद्वारा निर्धारित हमारा परम कर्त्तव्य है—ऐसा संसारमें प्रचार करेंगे। उस समय हमारा विचार ऐसा होगा कि 'हम युवक हैं, इसलिये युवकका धर्म हम अवश्य पालन करेंगे। ईश्वरने हमें इन्द्रियाँ प्रदान की हैं, उन सबके विषय भी बनाये हैं, इसलिये हम इन्द्रियोंके द्वारा भोगा जाने वाला प्रत्येक विषय संग्रह करेंगे। ईश्वर तो निराकार हैं, निर्विशेष हैं, निरञ्जन हैं, निर्विलास हैं, उनको हाथ, पैर, आँख, नाक या रसना कुछ भी नहीं है। समस्त प्रकारकी इन्द्रियाँ हमको ही हैं—इधर भोगकी सामग्रियाँ भी हैं। अतएव वे सभी हमारे भोगके लिये ही बनी हैं। भगवान तो कदापि इन सबको भोग नहीं सकता है।—इस प्रकार अनेकों अपराधमय विचारोंका जगतमें प्रचार करेंगे।' ऐसी दशामें हम अपने नित्यमङ्गलके विरोधी असत् लोगों-को ही अपना मित्र समझेंगे; क्योंकि वे हमारी इन्द्रियों-को रुचिकर लगनेवाली बातें बतलायेंगे तथा उसी बुरे मार्गको दिखलायेंगे। परन्तु हमारे वैसे मित्र कितने दिनों तक यथार्थ बन्धुका काम करेंगे? उनकी शक्ति या सामर्थ्य ही कितनी है! क्या हम इन तथा-कथित मित्रोंके स्वरूपका विवेचन करनेका थोड़ा भी समय नहीं पाते?

हरिसेवा छोड़नेसे दुर्गति

जिन इन्द्रियोंद्वारा हम इस बाह्य जगत्का दर्शन कर रहे हैं, वे इन्द्रियाँ ही क्या 'मैं' हूँ? श्रीभगवान रहें या न रहें, इससे हमारा कुछ भी बनता-बिगड़ता नहीं है, परन्तु हम नित्यधर्मकी आलोचना छोड़ कर वर्त्तमान समयमें देश या समाज-शासन (Civic administration) को ही लेकर व्यस्त हैं। हम अनेक धर्मका नाम लेकर अधर्मको ही धर्म समझ बैठे हैं—अत्यन्त नास्तिक व्यक्तिको ही धार्मिक और ईश्वर विश्वासी समझते हैं—अत्यन्त विष्णुविरोधी और वैष्णवापराधी व्यक्तिको ही परम वैष्णव मानते हैं—विषय-भोग संग्रहकी बातोंको ही धर्मोपदेश मानते हैं—पुण्य और पाप संग्रहकी नानाप्रकारकी चेष्टा करते हैं—कभी पुण्य और पाप त्याग करने की चेष्टाकी आड़में नास्तिक हो पड़ते हैं। परन्तु मुण्डक ३।३ में ऐसा कहा गया है—

"यदा पश्यं पश्यते रुक्मवर्णं
कर्त्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम्।
तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय
निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति॥"

—जब ब्रह्मयोनिका अर्थात् ब्रह्म जिनकी अङ्ग कांति है, उन हेमकान्ति परमेश्वर पुरुषोत्तमका दर्शन करने पर ही जीव विद्वान् होते हैं और पुण्य-पापकी प्रवृत्तिका त्याग करते हैं, उसी समय वे अञ्जन अर्थात् मनोधर्मकी मलीनतासे सर्वथा मुक्त होकर

हरिसेवामें नियुक्त होनेके कारण परमसाम्य या शान्ति को प्राप्त होते हैं। श्रीचैतन्यचरितामृतमें भी कहा गया है—

कृष्णभक्त निष्काम, अतएव शान्त।
भुक्ति-मुक्ति-सिद्धि-कामी, सकलई अशान्त॥

अर्थात् कृष्णभक्त निष्काम होनेके कारण शान्त होते हैं। इसके विपरीत भुक्ति-मुक्ति सिद्धि और कामी व्यक्ति सर्वदा अशान्त रहते हैं। अतएव कृष्ण-सेवा—भक्तिके बिना शान्ति प्राप्ति करना असम्भव है।

सबको निरन्तर हरिभजनके लिये उपदेश

क्या मनुष्य इतना ही मूर्ख है कि कृष्णभजन को छोड़कर उसका और कोई दूसरा कर्त्तव्य हो सकता है—ऐसा सोचकर वह परमार्थप्रद सुदुर्लभ मनुष्य-जन्मको बेपरवाह नष्ट कर सकता है। कृष्ण-भजनके अतिरिक्त जीवोंका कोई दूसरा कर्त्तव्य नहीं है या हो भी नहीं सकता है। इस विषयमें आपलोग क्या एकबार भी विवेचन नहीं करते, एकबार भी विचार करके देखते नहीं, एक बार भी मनुष्य नाम की सार्थकता दिखला नहीं सकते? निरन्तर हरिभजन कीजिए—समस्त जीवोंको हरिभजनमें नियुक्त कीजिए, —समस्त जीवोंकी चेतन-वृत्तिके पास पहुँच कर उन्हें हरिभजन करनेके लिये उत्साहित कीजिए। समस्त जीवोंकी, समस्त अजीवोंकी पूर्ण सार्थकता इसी बातमें है कि वे कृष्णपाद पद्ममें प्रतिष्ठित हों। दूसरी समस्त इतर चेष्टाओंको छोड़कर कृष्णके चरणकमलों में चेतनकी वृत्तियोंको नियुक्त करना ही हमारा एक मात्र कर्त्तव्य है। अनेक वस्तुएँ हमारे लिये कदापि पूज्य नहीं हो सकती। विष्णुका पद ही 'परम' पद है; वे ही हमारे एकमात्र सेवनीय हैं, आराध्य हैं या भजनीय हैं।

वाञ्छाकल्पतरुभ्यश्च कृपासिन्धुभ्य एव च।
पतितानां पावनेभ्यो वैष्णवेभ्यो नमो नमः॥

—ॐविष्णुपाद श्रीमद्भक्ति सिद्धान्त सरस्वतीजीके बङ्गला भाषणसे अनुदित।

सद्गुण और भक्ति

श्रीहरिभक्तिरसामृतसिन्धु ग्रन्थमें भक्तिके छः माहात्म्य बतलाये गये हैं, जिनमें शुभदत्व एक है। शुभ कितने प्रकारके हैं, इसके उत्तरमें यह श्लोक है—

शुभानि प्रीणनं सर्वजगतामनुरक्तये।
सद्गुणाः सुखमित्यादीन्याख्यातानि मनीषिभिः॥
(भक्तिरसामृतसिन्धु)

जिस पुरुषमें भक्ति उदित होती है, वे सम्पूर्ण जगतको प्रीति प्रदान करते हैं तथा वे समस्त जगत के अनुराग भजन होते हैं। वे सहज ही सब सद्गुणों के आधार बन जाते हैं और सब प्रकारके पवित्र सुखों और अनेक प्रकारके दूसरे कल्याणोंको प्राप्त कर लेते हैं। विद्वानोंने इनको शुभ बतलाया है।

भगवद्भक्तमें सभी गुण और देवताका समावेश होता है।

भक्तोंमें जिन गुणोंका समावेश होता है उन सब का श्रीमद्भागवतमें इस प्रकार वर्णन किया गया है—

यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिञ्चना,
सर्वैर्गुणैस्तत्र समासते सुराः।
हरावभक्तस्य कुतो महद्गुणा,
मनोरथेनासति धावतो बहिः॥
(भा० ५।१८।१२)

भगवानके प्रति जिनकी अकिञ्चना भक्ति होती है, उनमें समस्त गुणोंके साथ देवतागण सदा निवास करते हैं। परन्तु जिनका मन असत् बाहरी व्यापारों (इन्द्रियोंके विषयों) के प्रति सदा ही दौड़ता रहता है, ऐसे लोगोंमें महद्गुणोंकी सम्भावना ही कहाँ ?

स्कन्दपुराणमें देखा जाता है—

एते न ह्यद्भुता व्याध तवाहिंसादयो गुणाः ।
हरिभक्तौ प्रवृत्ता ये न ते स्युः परतापिनः ॥
अन्तःशुद्धिर्बहिःशुद्धिस्तपः शान्त्यादयस्तथा ।
अमी गुणाः प्रपद्यन्ते हरिसेवाभिकामिनम् ॥

—हे व्याध ! तुम्हारे हृदयमें जो अहिंसा आदि गुण होंगे—यह कोई अद्भुत बात नहीं है; क्योंकि जो लोग हरिभक्तिमें प्रवृत्ति हो चुके हैं, वे स्वभाविक रूपसे ही पर-पीड़नसे विरक्त होते हैं अर्थात् स्वभावतः ही किसीकी हिंसा आदि नहीं करते हैं। अन्तःकरणकी शुद्धि, बाह्य शुद्धि, तप और शान्ति आदि गुण हरि-सेवकोंका स्वयं ही आश्रय करते हैं।

वैष्णवोंके सद्गुण-समूह

श्रीचैतन्यचरितामृतमें भक्तोंमें विराजमान सद्-गुणोंका इस प्रकार उल्लेख है—

कृपालु, अकृतद्रोह, सत्यसार, सम ।
निर्दोष, वदान्य, मृदु, शुचि, अकिंचन ॥
सर्वोपकारक, शान्त, कृष्णैकशरण ।
अकाम, निरीह, स्थिर, विजित-षड्गुण ॥
मितभुक्, अप्रमत्त, मानद, अमानी ।
गंभीर, करुण, मैत्र, कवि, दक्ष, मौनी ॥
(चै. च. म. २२।७५-७७)

ये समस्त सद्गुण भक्तिके सहचर हैं। अब प्रश्न यह है कि ये गुण-समूह पहले संग्रहीत होनेके पश्चात भक्तिदेवीका आविर्भाव होता है, अथवा पहले भक्तिदेवी आविर्भूत होनेके पश्चात् इन गुणोंका निवास होता है ?

इस प्रश्नका उत्तर यह है कि भक्ति शास्त्रोंके अनुसार जीवोंकी भक्तिवासनारूप सुकृतिके प्रभावसे भक्तिके प्रति श्रद्धा उत्पन्न होती है। श्रद्धा होनेके पश्चात् जीव सत्संग प्राप्त होता है तथा सद्गुरुका पदाश्रय करके भजनमें प्रवृत्त होता है। भजनमें लगने से कुछ पूर्व तक उसमें अनेक अनर्थ अर्थात् सद्गुण विरोधी धर्म रहते हैं। भजन करते-करते वे सारे अनर्थ सहज ही भक्ति और साधुसंगके प्रभावसे धुल जाते हैं और उनके स्थान पर सद्गुण-समूह सहज ही उदित हो पड़ते हैं। जबतक अनर्थ नाश और सद्गुण प्रकाश नहीं होता, तब तक भजनाभास या नामाभास होता रहता है। एक ओर अनर्थ नाश और सद्गुण प्रकाशका कार्य चलता रहता है और दूसरी ओर शुद्ध भजन या शुद्धनाम भी चलता रहता है। ये दोनों क्रियाएँ एक साथ ही चलती हैं। इस अवस्थाके पश्चात् साधक की रुचि अनर्थ या पापोंके प्रति नहीं होती। अतएव श्रीचैतन्य महाप्रभुजी कहते हैं—

एक कृष्ण नाम करे सर्व पाप क्षय ।
नवविधा भक्तिपूर्ण नाम हैते हय ॥
(चै. च. म. १५।१०७)

कृष्णभक्ति उदित होनेके साथ-ही साथ सब जीवों के प्रति दयाभाव, निष्पापता, सत्यसारता, समदर्शीका भाव, दीनता, शान्ति, गांभीर्य, सरलता मैत्री, करुणा, दक्षता, असत् चर्चाके प्रति उदासीनता, पवित्रता आदि सब गुणोंका सहज ही उदय होता है। दूसरे गुणोंके लिये भक्तको चेष्टा नहीं करनी चाहिए। उनके लिये शुद्ध भक्तिका अनुशीलन करना ही यथेष्ट है। अनर्थ नाश और सद्गुण-उदय अत्यन्त शीघ्र ही होता है।

सद्गुणोंका उदय कैसे हो

योगाभ्यासमें जो यम, नियम और प्रत्याहार की शिक्षाकी प्रथा है, उसमें अत्यधिक कष्ट है, अधिक समयकी आवश्यकता होती है तथा अनेक बाधाएँ

हैं। जब तक भक्ति-उन्मुखी श्रद्धा नहीं होती, तब तक जीव योगमार्गीय गुणोंकी ओर आकृष्ट रहता है। परन्तु उदित-श्रद्धपुरुषोंके सत्सङ्गमें केवल यही प्रयत्न होता है कि उपरोक्त भक्तिके गुण-समूह उदित हों। योग मार्गमें अथवा नैतिक मार्गमें जिन गुणोंके लिये अभ्यास किया जाता है, उनके लिये भक्तजन आवश्यक नहीं समझते। क्योंकि उन गुणोंकी प्राप्ति हो जाने पर भी यदि भक्तिका अभाव रहता है, तो वह वैसा ही होता है जैसे किसी अत्यन्त कुरूपा स्त्री को बहुतसे आभूषण पहना दिये जाँय। दूसरे, उनको किसी प्रकार सौभाग्यवश सन्तोंकी कृपासे भक्ति-उन्मुखी श्रद्धा हो जाय तो वे बहुत शीघ्र ही उत्तमा भक्तिके साधनमें प्रवृत्त हो सकेंगे—इसमें सन्देह नहीं।

सत्सङ्गमें कृष्णभक्ति साधनका उपदेश

प्रिय भाइयों! आपलोग अपने समयको व्यर्थ न गवाँ कर अपने सद्गुणोंके उत्तम फल-स्वरूप भक्त संतोंका पदाश्रय कर जीवन और धर्म को सफल कीजिये। केवल सद्गुणोंके होनेसे ही भक्ति उदित हो जायेगी—ऐसी बात नहीं है। परन्तु भक्ति होनेसे समस्त प्रकारके सद्गुण सहज ही उपस्थित हो जाते हैं। कृष्णैकशरणके अतिरिक्त दूसरे-दूसरे सद्गुण होनेपर भी जब तक भक्तिके प्रति श्रद्धा नहीं हो जाती, तबतक भक्ति नहीं हो सकती। कृष्ण-भक्तिके बिना सारे सद्गुणोंका कोई महत्व नहीं है। कृष्ण भक्ति-विहीन सद्गुणसम्पन्न जीवका जीवन व्यर्थ ही समझना चाहिए।

—ॐविष्णुपाद श्रीमद्भक्ति विनोद ठाकुर

उपनिषद्-वाणी

[छान्दोग्य–२]

'ॐ' यह अक्षर उद्गीथ है—ऐसा जानकर ओंकार की उपासना करनी चाहिए–उसका उच्च स्वर में गान करना चाहिए। यह प्रसिद्ध है कि देवगण मृत्यु से डरकर ऋक्, यजुः और सामवेदमें प्रवेश किये थे—अर्थात् उनका आश्रय लिए थे। वे गायत्री आदि छन्दोंमें अपनेको आच्छादित किये थे। वह कवच-स्वरूप हुआ। आच्छादनके अर्थमें ही छन्द नाम पड़ा है।

मछुआ जिस प्रकार जलमें मछलीको ढूँढ लेता है, ठीक उसी प्रकार मृत्यु भी वेदोंमें छिपे हुए देवताओंको ढूँढ निकालती है। तब देवगण ओंकारमें प्रवेश करते हैं एवं निर्भय हो जाते हैं। क्योंकि ओंकार परमात्माका स्वरूप है। ऋक्, साम, यजुः आदि समस्त वेदोंके मंत्रोंको उच्चारण करनेके पहले ही ओंकारका जोर-जोरसे कीर्तन करना चाहिए। अतएव ओंकार भगवत्स्वरूप होनेसे अमृत है। जो इसका उच्चारण करते हैं, वे उसीके द्वारा परमात्माकी स्तुति करते हैं। वे सर्वथा भयरहित होकर भगवत् पादपद्मों में शरणागत होते हैं एवं अमृतको प्राप्त होते हैं।

आकाशमें विचरण करनेवाले सूर्यमें परमात्मा की स्थिति है। इसीलिए सूर्यमें परमेश्वर और उसके वाचक ओंकारकी भावना करनी चाहिए। 'स्वरन् एति', उच्चारणपूर्वक गमन करते हैं इसी अर्थमें सूर्यपद बना है।

एक समय कौषीतकी ऋषि अपने पुत्रसे बोले कि वे सूर्यको लक्ष्यकर ओंकारकी उपासना करके पुत्र

लाभ किये हैं। उन्होंने उसे सूर्य रश्मिके चारों ओर ओंकारका उच्चारण करते हुए आवर्त्तन करनेका उपदेश किया। यह आधिदैविकी उपासना है।

अब आध्यात्मिक उपासनाकी बात बतलायी जा रही है। श्वास-वायुके रूपमें प्रवाहित होनेवाले मुख्य प्राणका अवलम्बनकर ओंकारकी उपासना करनी चाहिए। प्राणके द्वारा श्वास रूपमें आने-जानेके समय निरन्तर ओंकारकी उपासना होती है, कौषीतकी ऋषिने अपने पुत्रको प्राणको लक्ष्यकर ओंकारकी उपासना करनेका उपदेश दिया था।

सामका उद्गीथ अंश ही प्रणव है, क्योंकि प्रणव ही उसका सार है और प्रणवके अतिरिक्त कोई भी मन्त्र उच्चारित नहीं होता। प्रणवके उच्चारणसे यज्ञादिके सारे दोष दूर होजाते हैं। क्योंकि समस्त कार्योंके अन्तमें भगवन्नाम कीर्तनके द्वारा सर्व प्रकार के वैगुण्य दूर होजाते हैं एवं वह कर्म पूर्णताको लाभ करता है।

पृथिवी ऋक् एवं अग्नि साम है। अग्निरूप साम पृथिवीरूप ऋक्में प्रतिष्ठित है। पृथिवी 'सा' है और अग्नि 'अम' है। इन दोनोंसे साम हुआ है। फिर अन्तरीक्ष ऋक् है एवं वायु साम है। वायुरूप साम अन्तरीक्षमें अवस्थित है। पुनः 'द्यु' अर्थात् स्वर्ग ऋक् है एवं सूर्यसाम है। क्योंकि सूर्य स्वर्गमें अवस्थित है। समस्त नक्षत्रमण्डल ऋक एवं चन्द्र साम है। क्योंकि चन्द्र नक्षत्रमण्डलमें अवस्थित है।

प्रत्यक्ष दीखनेवाले सूर्यकी श्वेत आभा ऋक् है एवं उनके भीतर छिपा हुआ नीलापन और श्यामता साम है। अतएव उज्जल आभा 'सा' है एवं श्यामरूप 'अम' है। वे दोनों मिलकर साम है। फिर सूर्यका अन्तर्यामी स्वर्ण सदृश प्रकाशरूप पुरुष ही परमात्मा हैं, जिनकी दाढ़ी सुवर्णकी भाँति प्रकाशमय है और सबकुछ स्वर्णमय प्रकाशयुक्त है। उनके दोनोंनेत्र लालकमलके सदृश हैं। उनका नाम उत् (सबसे ऊपर उठा हुआ) है। वे समस्त पापोंसे ऊपर हैं अर्थात् अतीत हैं। जो कोई इस प्रकार जानकर उनकी उपासना करते हैं, उनके समस्त पाप निश्चय ही नष्ट होजाते हैं।

ऋक्वेद और सामवेद उन परमात्माके ही गुण-गान स्वरूप हैं। इसीलिए वे उद्गीथ हैं। अतएव उद्गाता परमेश्वरका ही वे गुणगान करते हैं। परमेश्वर ही स्वर्ग और उसके ऊपर स्थित लोकोंके नियामक और शासक हैं। यह आधिदैविक उपासना है।

वागिन्द्रिय ऋक् एवं प्राण साम है। प्राणरूप साम वाणीरूप ऋक्में प्रतिष्ठित है। इसीप्रकार नेत्र ऋक् है एवं उसके बीचकी कालीपुतली साम है। फिर श्रोत्र ऋक् एवं मन साम है। नेत्रमें अवस्थित पुरुष ही ऋक्, साम और यजुर्वेद हैं और वे ही उक्थ अर्थात् समस्त स्तोत्र हैं और वे ही ब्रह्म हैं। वे ही आदित्यमण्डलमें स्थित हैं। इसीलिए सूर्य नेत्रके अधिष्ठात्री देवता हैं। पृथिवीके नीचे और पृथिवी पर वासकरनेवाले जितने प्राणी हैं, वे उन सबके शासक और नियामक हैं। इस रहस्यको जान लेनेपर अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती है।

एकबार शालावानके पुत्र 'शिलक', चिकितायनके पुत्र 'दाल्भ्य' एवं जीवलके पुत्र 'प्रवाहन' जो तीनों ही उद्गीथ विद्यामें निपुण थे, आपसमें कहने लगे कि हम सभी उद्गीथ विद्यामें कुशल है। अतएव उसके सम्बन्धमें बातचीत करें। तब प्रवाहन ऋषि शेष दोनोंसे बोले—"आप दोनों पूज्यगण चर्चा आरम्भ करें। मैं ध्यानपूर्वक आप लोगोंके वचनोंको सुनूँगा" ऐसा कहकर वे चुप होगये।

तदनन्तर शालावानके पुत्र शिलक ऋषि चिकितायनके पुत्र दाल्भ्य ऋषिसे बोले—"सामका आश्रय कौन है ?"

दाल्भ्य ऋषिने उत्तर दिया—"स्वर ही सामका आश्रय है।"

शिलक—"स्वरका आश्रय कौन है ?"

दाल्भ्य—"प्राण ही स्वरका आश्रय है।"

शिलक—"प्राणका आश्रय कौन है ?"

दाल्भ्य—"अन्न ही प्राणका आश्रय है।"

शिलक—"अन्नका आश्रय कौन है ?"

दाल्भ्य—"जल ही अन्नका आश्रय है।"

शिलक—"जलका आश्रय कौन है ?"

दाल्भ्य—"स्वर्गलोक ही जलका आश्रय है।"

शिलक—"स्वर्गलोकका आश्रय कौन है ?"

दाल्भ्य—"स्वर्गलोकके ऊपर और कुछ भी नहीं है। स्वर्गमें ही सामकी पूर्णरूपसे स्थिति है। इसी लिए श्रुतिकी उक्ति है—'स्वर्गो वै लोकः सामवेदः' इसलिए स्वर्गसे ऊपरकी बात नहीं पूछनी चाहिए।"

यह सुनकर शिलक बोले—"दाल्भ्य! तुम्हारा बताया हुआ साम निःसन्देह ही प्रतिष्ठाहीन है अर्थात् स्वर्ग ही अन्तिम आश्रय नहीं है। उसका भी कोई आश्रय अवश्य ही है।"

इस पर दाल्भ्यने पूछा—"स्वर्गलोकका आधार कौन है ?"

शिलक—"मनुष्यलोक ही स्वर्गका आश्रय है।"

दाल्भ्य—"मनुष्यलोकका आधार क्या है ?"

शिलक—"मनुष्यलोक ही सामसे प्रतिष्ठित है उसके ऊपर कोई प्रश्न नहीं उठता। क्योंकि सामको सबके प्रतिष्ठारूप मनुष्यलोक कहकर स्तुति की जाती है।"

तब चुपचाप श्रवण करनेवाले प्रवाहन ऋषिने शिलकसे कहा—"शिलक! तुम्हारा बतलाया हुआ तत्त्व भित्तिहीन है।"

यह सुनकर शिलक ऋषिने प्रवाहन ऋषिसे पूछा—"तब आप ही बतलावें कि मनुष्य लोकका आश्रय क्या है ?"

प्रवाहन बोले—"आकाश ही मनुष्यलोकका आश्रय है। समस्त जीव आकाशमें ही उत्पन्न होते हैं एवं आकाशमें ही विलीन हो जाते हैं। आकाश ही सबका आश्रय है। अतएव वह परमेश्वर-स्वरूप है। जो इस प्रकार जानकर परमेश्वरको सबके आश्रयके रूपमें उपासना करते हैं वे निश्चय ही बड़ेसे बड़े एवं उत्तम लोकोंको भी जीत लेते हैं अर्थात् उत्तम लोकको प्राप्त होते हैं।"

एकबार अधिधन्वा ऋषिने शाण्डिल्य ऋषिको ऊपर बताये हुए उद्गीथका रहस्य बतलाकर कहा था कि जो इस रहस्यको जान लेते हैं वे साधारण मनुष्यों से श्रेष्ठ होते हैं और अन्तमें वे उत्तम लोकमें स्थान पायेंगे।

एकबार अत्यधिक शिलावृष्टि होनेसे कुरुदेशकी सारी खेती चौपट होगयी थी। उन दिनों चक्र मुनि के पुत्र उषस्ति ऋषि अपनी धर्मपत्नी (जिसने अभी युवावस्थामें प्रवेश नहीं किया था) के साथ बड़ी हीन अवस्थामें किसी चण्डालकुलमें उत्पन्न हाथीवान के गाँवमें रहते थे और भिक्षा द्वारा जीवका-निर्वाह करते थे। एक दिन वे कहीं भी भिक्षा न पाकर भूख से पीड़ित होकर उड़द खाते हुए एक महावतसे याचना की। महावतने पहले तो उड़द देना अस्वीकार किया, परन्तु ऋषिके अत्यन्त दीनतापूर्वक आग्रह करनेपर पात्रमें बचे हुए सारे उड़द दे दिये। ऋषिके भोजन कर लेनेपर महावत अपने जलपात्रसे पीनेके लिए जल भी देने लगा, परन्तु ऋषिने यह कहकर उसका जल लेना अस्वीकार कर दिया कि मेरे प्राणोंकी रक्षा तो हो गयी है, तुम्हारा जल लेनेसे मुझे तुम्हारा जूठा खानेका दोष लगेगा। यह सुनकर महावतने कहा—"क्या ये उड़द जूठे नहीं थे ?" ऋषिने उत्तर दिया—"अवश्य ही इन उड़दोंको न खानेपर मैं जीवित नहीं रहता। पर पीनेका पानी तो प्रचुर मिल ही जाता है। अतएव मुझे तुम्हारा जल नहीं पीना चाहिए।"

इस प्रसङ्गमें वेदान्तके तीसरे अध्यायके चतुर्थपाद के २८ वें सूत्रमें कहा गया है—"सर्वान्नानुमतिश्च प्राणात्यये तद्दर्शनात्।" अर्थात् प्राण-नाशकी सम्भावना होनेपर किसी प्रकारके व्यक्तिके अन्न खानेसे पाप नहीं लगता है। परन्तु आपत्कालके अतिरिक्त और दूसरे समयमें ऐसा नहीं करना चाहिए। क्योंकि आहार शुद्धिसे सत्त्व शुद्धि और सत्त्व शुद्धिसे ध्रुवानुस्मृति होती है ऐसी स्मृतिसे ही सब प्रकारके बन्धनों से छुटकारा पाया जा सकता है।

—त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिभूदेव श्रौती महाराज

दार्शनिक विचारधारा और भारत

प्रत्येक देश, प्रान्त, नगर, ग्राम या व्यक्तिविशेषकी विचारधारा दूसरे व्यक्तिविशेषसे कुछ न कुछ भिन्न होती है; क्योंकि "भिन्नरुचिर्हि लोकः" कथन अक्षरशः सत्य है। भारतकी संकृति या सभी प्रकारके आन्तरिक अथवा बाह्य विचार संसारके प्रत्येक देशसे अपनी कुछ विशेषता रखते हैं। यदि हम अत्यन्त प्राचीन परम्पराओंको दृष्टिगत रखते हैं, तो उक्त सभी बातें इसका साक्षात् प्रमाण हैं। भारतीय मानव क्यों प्राचीन रूढ़ियोंका अनुगामी है ? क्यों प्रत्येक जाति, दल या समाजविशेष प्राच्य बातोंको अपने लिये आदर्शरूपसे उपस्थित करता है ? इसका भी एक विशेष हेतु है।

अर्वाचीन कालमें एकताकी दौड़में सभी देश धावित हो रहे हैं तथा कहा जाता है कि भारत उसी रूढ़िगत विशेषताको लेकर चल रहा है जो कि उसकी अवनतिका द्योतक है, किन्तु विचार करनेकी बात है कि संसारमें उन्नति दो प्रकारकी होती है—(१) स्थायी और (२) अस्थायी।

जर्मनी किस क्षणमें भौतिक उन्नतिकी चरमसीमा पर पहुँच गया तथा शीघ्र ही देखते-देखते नष्ट भी हो गया। अतः वास्तविक रूपमें उन्नति अवनतिमें परिणत हो गयी। मानव कहता है कि 'अणुबम' आदि अस्त्र जो कि विज्ञानके चमत्कार माने जाते हैं, इससे संसारकी रक्षा हो सकती है तथा वही देश अन्य देशोंकी अपेक्षा अत्यन्त समृद्ध एवं सुसम्पन्न माना जा सकता है; किन्तु दुःख है कि मानव इस प्रकारके अस्थायी, अदृश्य अनुपयुक्त सुखको चिर-स्थायी मानने लगता है। इसके विपरीत उस अवश्यं-भावी सुखको-जो देवताओंको भी अप्राप्त है—दृष्टि-पात भी नहीं करता।

भारतीयोंने सबसे प्रथम संसारको प्रपंचमय एवं अनित्य कहा है तथा संसारके प्रसिद्ध २ दार्शनिक विद्वानोंके शब्दोंमें हम अब भी कह सकते हैं कि भारतका प्रत्येक वयोवृद्ध, तरुण या बालक—सभी दार्शनिक हैं। परन्तु यह धारा दूसरे देशोंमें अत्यन्त अल्परूपमें देखनेमें आती है। एक भारतीय चाहे वह सिख, मुसलमान, ईसाई या हिन्दू, कुछ भी हो, 'अहिंसा परमो धर्मः' की रट लगाता है। ऐसा कौन कठोर हृदयका भारतीय होगा जो किसी नदीमें डूबते हुएको देखकर उसकी आर्द्रध्वनिको सुनकर द्रवित नहीं हो जायगा ? इससे सिद्ध है कि भारतीय सदैव से सहृदय ही चले आ रहे हैं।

यदि हम वेदोंके विषयमें सोचते हैं तो यह सत्य है कि वैदिक ज्ञान अपौरुषेय है। इससे इतर ज्ञान पौरुषेयत्व प्राप्त करनेका अधिकारी है। 'वेद' विद् ज्ञाने धातुसे निर्मित है। वेदोंके दो विभाग किये जा सकते हैं—(१) संहिता भाग और (२) ब्राह्मण भाग। संहितामें केवल मन्त्रोंका समुदाय निरूपण है; किन्तु ब्राह्मण भागमें मन्त्रोंकी व्याख्या है। ब्राह्मण भाग तीन भागोंमें विभक्त है—(१) ब्राह्मण भाग, (२) आरण्यक और (३) उपनिषद् भाग। ब्राह्मण भागमें यज्ञोंका विवेचन है। आरण्यक भाग जन-साधारणसे दूर अरण्यमें अध्ययन करनेकी वस्तु है तथा उपनिषद् ब्रह्मविद्या है।

'उपनिषद्'—शब्द उप+नि+सद् से निर्मित है। 'शद लृ गति अवसादने च'—इससे सद्के तीन अर्थ हैं—(१) नाश होना, (२) गति होना और (३) अवसादन होना। छात्र (शिष्य) उपनिषदोंको गुरु-मुखसे गुरुके पास बैठकर अध्ययन करता है। प्राचीन कालमें शिष्य इसी प्रकारसे गुरुके पास उप-

कोई उपदेशोंका अध्ययन करते थे। माण्डूक्योपनिषद्के अनुसार विद्या, परा और अपराके भेदसे दो प्रकारकी है। परा विद्याके द्वारा अक्षर ब्रह्मका ज्ञान होता है; जबकि अपरा विद्या षडङ्ग (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद और ज्योतिष) का बोध कराती है।

भारतीय दर्शन दो विभागोंमें विभाजित किया जा सकता है—(१) आस्तिक और (२) नास्तिक। यदि आस्तिक या नास्तिक शब्दोंकी व्युत्पत्ति करें तो अर्थ कुछ आश्चर्यमय होता है। 'अस्ति परलोके मतिः यस्य सः आस्तिकः' तथा 'नास्ति दिष्टं मतिः यस्य सः नास्तिकः'। परन्तु पारमार्थिक रूपमें इन शब्दोंके अर्थ इस प्रकार लिये जाते हैं—जो वेदके अपौरुषेयत्वको तथा ईश्वरको स्वीकार करते हैं, वे आस्तिक हैं और इसके विपरीत जो वेदके अपौरुषेयत्व और ईश्वरको स्वीकार नहीं करते, वे नास्तिक हैं। मनुजीने भी कहा है—'नास्तिको वेद निन्दकः'।

प्राचीन दर्शन मुख्य रूपमें छः प्रकारके माने गये हैं—(१) न्याय, (२) वैशेषिक, (३) सांख्य, (४) योग, (५) पूर्वमीमांसा और (६) उत्तर-मीमांसा या वेदान्त दर्शन। इन छः दर्शनोंको आस्तिक-दर्शनके अन्तर्गत माना गया है। इनके अतिरिक्त जैन दर्शन, बौद्ध-दर्शन तथा चार्वाक दर्शन—ये तीन नास्तिक दर्शन हैं।

वेद या दर्शनोंके पठन-पाठनका अधिकार द्विज मात्रको ही ऋषियोंद्वारा प्राप्त है तथा द्विजके लिये प्राचीनकालमें वेद पढ़ना अभीष्ट था। इसीलिये उनके लिये वेद-पठनके अभावमें शूद्रजातिवाचक सिद्ध किया है।—

> योऽनधीत्य द्विजो वेदं अन्यत्र कुरुते श्रमम्।
> सः जीवन्नेव शूद्रत्वं आशु गच्छतिसान्वयः॥

इसके पश्चात् 'ब्राह्मण' संज्ञा भी द्विजको अन्तमें प्राप्त होती है जैसा कि इससे प्रतीत होता है—'जन्मना जायते शूद्रः संस्कारात् द्विज उच्यते। वेदपाठात् भवेत् विप्रः ब्रह्मजानाति ब्राह्मणः॥ अतः स्पष्ट है कि जब ब्रह्मज्ञान होता है तभी ब्राह्मण संज्ञा होती है। यह किसी प्रकार भी ग्राह्य नहीं है कि जन्म मात्रसे ही कोई व्यक्ति ब्राह्मण कहलानेका अधिकारी है।

अतः ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मण हो जाय तो उसके कर्तव्य ही यह बतलाते हैं कि वह संसारको वैदिक-संस्कृतिसे आप्लावित करनेकी चेष्टा करे; कहा भी है—

> एतत् देश प्रसूतस्य सकाशात् अग्रजन्मनः।
> स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् प्रथिव्यां सर्वमानवाः॥
> (मनुस्मृति)

अतः ब्राह्मणको चतुर्वर्णका शिक्षक एवं उपदेशक बतलाया गया है।

यदि 'दर्शन'-शब्दकी व्युत्पत्ति तथा अर्थ ग्रहण किया जाय तो 'दृश्यते अनेन इति दर्शनं' इस प्रकार यह दर्शनकारक वस्तु है। दर्शन भी उस परमार्थ सत्ता-का होता है जिसे अक्षर ब्रह्म कहा गया है। दर्शनको शास्त्र भी कहते हैं।

'शासनात् शंसनात् शास्त्रं शास्त्रं इत्यभिधीयते'। शासन् शब्दका अर्थ आज्ञा करना तथा शंसका अर्थ वर्णन करना है। दोनों प्रकारकी क्रियाएँ इसमें की जाती हैं। अतः उक्त अर्थ वास्तविक है।

पाश्चात्य दर्शनके लिये 'फिलासौफी' शब्दका प्रयोग किया जाता है। 'फिलासौफी'-शब्द भी दो शब्दोंका मिश्रितरूप है—(१) फिलास और (२) सोफिया। फिलास=प्रेम और सोफिया=विद्या। अतः फिलासौफी पुराने समयमें विद्यानुराग अर्थमें चरितार्थ होता था। किन्तु समय क्रमसे अर्थ भेद होता गया। कुछ समय तक विज्ञान भी फिलासौफी-के अन्तर्गत था। परन्तु अब पाश्चात्य दर्शनका विज्ञानसे पार्थक्य प्राप्त हो गया है और ऐसा माना जाने लगा है कि Philosophy begins in wonder अर्थात् फिलौसोफी कल्पना कुशल कोविदोंके मनोविनोदका साधनमात्र है। परन्तु दर्शन-कारको (१) आध्यात्मिक, (२) आधिदैविक और

आधिभौतिक—इन दुःखत्रयसे निवृत्तिके लिये साध्य-का निश्चय करना पड़ता है तथा इसके लिये साधन भी करना पड़ता है।

भारतीय दर्शन अपौरुषेय है; किन्तु पाश्चात्य फिलौसौफी सातवीं शताब्दीमें ही प्रारम्भ हुई है। इसका उदाहरण उस नदीसे दिया जा सकता है जो कि कभी प्रकट होती गयी है तथा कभी अप्रकट होती गयी है। इसके विपरीत भारतीय दर्शन गङ्गाके समान है जो दूसरी-दूसरी नदियोंसे पुष्ट होकर सभी क्षेत्रोंको शस्य-सम्पन्न बनाती है। भारतीय दर्शनमें आत्म-तत्त्वका सर्वोपरि स्थान है। उपनिषद्में भी कहा गया है—'आत्मा वाऽरे द्रष्टव्यः, श्रोतव्यः, मन्तव्यः, निदि-ध्यासितव्यः।' आत्मदर्शनके तीन साधन हैं—श्रवण, कीर्तन और निदिध्यासन।

भारतीय दर्शनोंमें महर्षि वेदव्यासके ब्रह्मसूत्र या वेदान्त दर्शनका स्थान सर्वोच्च है। परिवर्ती कालमें विभिन्न सम्प्रदायोंके आचार्योंने इस पर अपने-अपने साम्प्रदायिक दृष्टिकोणसे भाष्य लिखे हैं। इन भाष्यों-में शङ्करका 'शांकर (शारीरिक) भाष्य', श्रीरामानुजका 'श्रीभाष्य', श्रीमध्वाचार्यका सूत्रभाष्यम् और अणु-भाष्यम्, श्रीनिम्बार्काचार्यका 'वेदान्त-पारिजात सौरभ भाष्य' और श्रीगौड़ीय वेदान्ताचार्य श्रीबलदेव विद्याभूषणका 'श्रीगोविन्द भाष्य—ये प्रधान भाष्य हैं। इसी वेदान्त दर्शनका अवलम्बन कर (१) शङ्करने अद्वैतवाद, (२) श्रीरामानुजाचार्यने विशिष्टाद्वैतवाद, (३) निम्बादित्याचार्यने द्वैताद्वैतवाद, (४) विष्णु-स्वामीने शुद्धाद्वैतवाद, (५) मध्वाचार्यने द्वैतवाद तथा (६) श्रीचैतन्य महाप्रभुजीने अचिन्त्यभेदाभेद तत्त्वका प्रचार किया है तथा सभी सम्प्रदायोंमें ब्रह्म-विषयक अनेकानेक दार्शनिक ग्रन्थ लिखे गये हैं।

भारतीय वैष्णव दर्शन पृथक्-पृथक् होते हुए भी परस्पर विरोधी नहीं हैं। इन दर्शनकारोंकी यह विशे-षता ही भारतीय दर्शनको ऐसा उत्कृष्ट स्थान दिये हुए है तथा अनेक दार्शनिक ग्रन्थ संसारकी अनेक भाषाओंमें रूपान्तरित हो गये हैं। अतः हम यह आशा करते हैं कि प्रत्येक भारतीय इस अमूल्य निधि-को समाप्त नहीं होने देगा तथा अध्ययन और अध्या-पनके द्वारा युगे-युगे इसकी श्रीवृद्धि ही करता रहेगा।

—श्रीकेशवदेव शर्मा (रिसर्च स्कालर)
प्राध्यापक, बलवंत राजपूत कॉलेज, आगरा

सन्मुख कैसे आऊँ

प्रभु! तुम सन्मुख कैसे आऊँ?
मैं निलज लाज नहीं जानी, पतितन हाथ बिकाऊँ॥
मैं कुटिल नीच अति कामी, नित विषयन को धाऊँ।
माया ममता मग उरझानी, नेक राह न पाऊँ॥
पतित उधारन नाम तिहारो, कैसे विरद मैं गाऊँ।
'सुशील' श्याम तुम्हरे विरहामें निश दिन नीर बहाऊँ॥

—श्रीसुशीलचन्द्र त्रिपाठी, एम. ए. साहित्यरत्न

शारदीया पूजा

शरत्कालमें जगन्माता महामायाकी पूजा शारदीय पूजाके नामसे प्रसिद्ध है। बंगालमें इस पूजाका इतना प्रबल प्रचलन है कि, इसे भाषा द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता है। परन्तु इसका मूल उद्गम कहाँ है? इस विषयमें अनुसन्धान करनेकी कोई चेष्टा नहीं करते। जिस प्रकार आकाशके नीचे रहनेवाले प्राणी आकाशका दर्शन करते हैं और उसे ही सबसे बड़ा मानते हैं, जलमें रहनेवाले जलचर प्राणी जलमें ही विचरण करते हैं और उसे ही सबसे बड़ा मानते हैं—वे जलके अतिरिक्त अन्य वस्तुको नहीं जानते, ठीक उसी प्रकार महामायाके राज्यमें वास करनेवाले प्राणी महामायाके अतिरिक्त अन्य वस्तुके सम्बन्धमें कैसे ज्ञान प्राप्तकर सकते हैं? सर्वत्र ही तो महामाया का अधिष्ठान है, सभी उपादानोंमें ही महामायाका अस्तित्व हैं; क्योंकि जागतिक उपादान तो महामाया का ही परिणाम है। इसीलिये चण्डीमें कहा गया है—

त्वयैतद्धार्यते विश्वं त्वयैतत् सृज्यते जगत्।
त्वयैतत् पाल्यते देवि त्वमत्स्यन्ते च सर्वदा॥
विसृष्टौ सृष्टिरूपा त्वं स्थितिरूपा च पालने।
तथा संहृतिरूपान्ते जगतोऽस्य जगन्मये॥
(चंडी १।५६-५७)

श्रीब्रह्म संहितामें भी ठीक इस प्रकार कहा जाया है—

सृष्टि-स्थिति-प्रलय-साधन-शक्तिरेका
छायेव यस्य भुवनानि बिभर्ति दुर्गा।
इच्छानुरूपमपि यस्य च चेष्टते सा
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥

तात्पर्य यह कि भगवान् श्रीहरिकी आज्ञासे ही दुर्गादेवी ब्रह्माण्डकी सृष्टि करती हैं, फिर पालन करती हैं और अन्तमें उसका संहार करती हैं। केवल दुर्गा देवी ही नहीं, किसी भी देवतामें स्वतन्त्ररूपमें कोई भी कार्य करनेकी शक्ति नहीं है।

बंगालमें और उड़ीसा तथा बिहारके कुछ भागों में दुर्गापूजाका प्रचलन देखा जाता है। दूसरे प्रान्तों-में इसका नामोल्लेख भी नहीं पाया जाता। बंगालके निकट होनेके कारण ही उन दोनों प्रान्तोंमें इसका थोड़ा-बहुत प्रचार है। वह भी कुछ दिनोंसे ही है। परन्तु कबसे और किसके द्वारा यह पूजा प्रचलित हुई, इस विषयमें अधिकांश लोग कुछ भी नहीं जानते। अतएव इस विषयमें अनुसन्धानकी आव-श्यकता है। अस्तु, इस पर कुछ विचार दिया जा रहा है।

विश्वस्तसूत्रसे ऐसा पता चलता है कि लगभग तीन सौ वर्ष पहले ताहिरपुरमें कंसनारायण नामक एक राजाने इस दुर्गापूजाका श्रीगणेश किया था। कुछ लोगोंका यह कहना है कि श्रीरामचन्द्रजीने सर्वप्रथम इस पूजाका अनुष्ठान किया था; परन्तु यह धारणा सर्वथा निराधार एवं सिद्धान्त-विरुद्ध है। बंगला भाषामें मुद्रित कृत्तिवासी-रामायणमें इस घटनाका उल्लेख मिलता है; परन्तु आदि रामायण, बाल्मीकि मुनि द्वारा रचित मूल रामायणमें तथा सुप्रसिद्ध तुलसीकृत मानस-रामायणमें इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता। कृतवासी रामायणकी बातें सिद्धान्त विरुद्ध और प्रक्षिप्त हैं—इसमें संदेह नहीं है।

पंचांगोंमें शारदीया पूजाकी दशमी तिथिमें "रामचन्द्रका विजयोत्सव"—लिखा रहता है तथा कुछ लोगोंकी ऐसी धारणा है कि इसी दिन श्रीराम-चन्द्रने रावणका बध किया था। परन्तु इस बातकी

भित्ति नहीं है। क्योंकि यह बात निश्चित है कि श्रीरामचन्द्रजीने इस तिथिमें रावणका बध नहीं किया था। शास्त्र-युक्ति और सिद्धान्तके अनुसार विचार करने पर यही प्रमाणित होता है कि रामचन्द्रका लंकासे लौटने पर तुरन्त ही चैत्र मासकी शुक्ला नवमीको पुष्या नक्षत्रमें राज्याभिषेक हुआ था। वाल्मीकि रामायण, युद्धकाण्डके १०८वें सर्गमें अनेक लेखकों द्वारा रचित टीकाओं द्वारा इसी विचारकी पुष्टि होती है—

अत्र युद्धदिवसगणनायां कतकतीर्थौं—ततः कृष्ण प्रतिपदि युद्धारम्भः तस्यामेव रात्रौ नागपाशवद्ध तद्विमोक्षौ। द्वितीयायां धुम्राक्षधः। तृतीयायां वज्रदंष्ट्रस्य। चतुर्थ्यामकम्पनस्य। पञ्चम्यां प्रहस्तस्य। षष्ठ्यां रावणभंगः। सप्तम्यां कुम्भकर्णबधः। अष्टम्यां अतिकायादेः। नवम्यामिन्द्रजितो ब्रह्मास्त्र-प्रयोगः। दशम्यां दिवा निकुम्भबधः तद्रात्रौ मकराक्ष बधः। एकादश्यादि त्रयोदश्यन्तदिनत्रयेणेन्द्रजिद्बधः। चतुर्दश्यां मृगबल बधः अमायां रावणयुद्धारम्भ-तद्बधाविति पञ्चदश दिनानि सर्वं युद्धमिति। चैत्रे पुष्यश्च शुक्लपक्ष एव, तत्रापि नवम्यादिदिनत्रये एवेति स्पष्टमेव ज्योतिषादौ। तत्र नवमी रिक्तात्वादभिषेकायोग्या, दशम्येव तु पूर्णात्वादेयाग्या। एवं च चैत्र शुक्ल दशम्यां प्रस्थानम्।

अर्थात् युद्धदिवसगणनाके सम्बन्धमें कुछ तीर्थों (आचार्यों) का कथन इस प्रकार है—कृष्णप्रतिपदाको युद्ध आरम्भ हुआ। उसी प्रतिपदाकी रातमें इन्द्रजित द्वारा राम और लक्ष्मण नागपाशमें बाँधे गये तथा गरुड़ द्वारा उनका बन्धन दूर हुआ था। द्वितीयामें धुम्राक्षका, तृतीयामें वज्रदंष्ट्रका, चतुर्थीमें अकम्पनका और पञ्चमीमें प्रहस्तका बध हुआ। षष्ठीमें रावण युद्धसे भागा, सप्तमीमें कुम्भकर्ण बध, अष्टमीमें अतिकाय बध, नवमीमें इन्द्रजीतका ब्रह्मास्त्र-प्रयोग, दशमीमें निकुंभ बध, उसी रात मकराक्ष बध, एकादशीसे त्रयोदशी तक तीन दिन इन्द्रजितके साथ युद्ध और इन्द्रजित बध, चतुर्दशीमें मृगबल बध तथा अमावस्या मेंरावण-युद्ध और रावण-बध हुआ था। उसके पश्चात् रावणका संस्कार, सीताजीकी अग्नि-परीक्षा और विभिषणका राज्याभिषेक इत्यादि कार्योंको करके शीघ्र ही चौदहवाँ वर्ष पूर्ण होते ही श्रीरामचन्द्रजी अयोध्यामें पधारे थे। क्योंकि भरतजीकी ऐसी प्रतिज्ञा थी कि यदि चौदह वर्ष पूर्ण होते ही रामचन्द्रजी अयोध्या नहीं लौटे, तो वे आगमें जल मरेंगे। यह पहले ही कहा जा चुका है कि श्रीरामचन्द्रजीका राज्याभिषेक चैत्र मासकी शुक्ला नवमीको पुष्या नक्षत्रमें हुआ था। अतएव श्रीरामचन्द्रजीने चैत्र महिनेके प्रारम्भमें ही रावणका बध किया था। यदि हम आश्विन शुक्ला दशमीके दिन रावण-बध मानते हैं, तब रामन्द्रजी रावणका बध करके कार्त्तिक, अग्रहायण, पौष, माघ और फाल्गुन—ये पाँच मास कहाँ बिताये? वे तो रावण बधके पश्चात् शीघ्र ही पुष्पक विमानसे अयोध्या लौटे थे।

एक दूसरे विचारके अनुसार ८८ दिन युद्धकी बात सुनी जाती है। ऐसा मान लेने पर वर्षाकालमें सैन्य-संग्रह, युद्ध-यात्रा आदि मानना पड़ता है, जो सर्वथा अयुक्ति-सङ्गत और शास्त्र-विरुद्ध है। इस प्रकार आश्विन शुक्ला दशमीमें रावण बध स्वीकार करने पर वर्षाकाल समाप्त होनेपर शरत्कालमें सीताकी खोज और युद्ध-यात्रा—वाल्मीकि आदि रामायणोंकी बात गलत हो पड़ेगी। दूसरी बात आश्विन शुक्ला दशमीसे चैत्र मास तक पाँच मास श्रीरामचन्द्रजीका रावण बधके पश्चात् बाहर रहना भी अयुक्ति-सङ्गत है। इसलिये युद्धकी समाप्ति चैत्र मासमें ही हुई थी। शारदीया विजयादशमीके दिन रामचन्द्रजीने युद्धके लिये यात्रा की थी—यही युक्तिसङ्गत और शास्त्र सिद्ध है।

दूसरी बात, रावणका बध करनेके लिये रामचन्द्रजी द्वारा दुर्गा-पूजाकी बात भी मन-गढ़न्त और शास्त्र-विरुद्ध है। इसका कारण यह है कि किसी भी प्रामाणिक ग्रन्थमें ऐसा उल्लेख नहीं है। दुर्गादेवी श्रीरामचन्द्रकी ही बहिरंगा शक्ति हैं। वे बद्धजीवोंको मोहित करनेके कारण लज्जावश भगवानके सामने

तक नहीं आतीं। यह श्रीमद्भागवतका सिद्धान्त है। अतएव भगवान द्वारा पूजा-ग्रहण, १०८ नील कमलसे पूजा और उनमेंसे एक कमलका अपहरण आदि कथाओंको कोई स्वीकृति नहीं होती। जिनमें भगवान-की इच्छाके विरुद्ध कुछ भी करनेकी सामर्थ्य नहीं है वे भला किस प्रकार इन विरुद्ध कार्योंको कर सकती हैं?

इसके पश्चात् सिंहवाहिनी महिषासुर-मर्दिनीकी जो पूजा देखी जाती है, चण्डीमें उसका इस प्रकार उपाख्यान है—

प्राचीनकालमें एक समय एक सौ वर्षों तक देवा-सुर संग्राम हुआ। उस देवासुर-संग्राममें महिषासुर नामक दानवने देवताओंको पराजित कर स्वर्गराज्य पर अधिकार कर लिया। इससे देवतागण दुःखित होकर पद्मयोनि ब्रह्माको साथ लेकर भगवान विष्णुके पास उपस्थित हुए। देवताओंकी हार और उनके राज्य पर महिषासुरके आधिपत्यकी बात सुनकर भगवान विष्णु बहुत ही क्रोधित हुए। उस समय उनके मुख-से एक महातेज निकला। साथ ही ब्रह्मा, शिव और दूसरे-दूसरे देवताओंके मुखोंसे भी तेज निकले और वे सभी तेज एक साथ मिलकर एक परम सुन्दरी नारीका रूप धारण किये। देवताओंने देखा कि यह नारी एक ज्वलन्त पर्वतके समान चमक रही है। उसकी दिव्य ज्योतिसे समस्त दिशाएँ व्याप्त हो गयीं। शंभुके तेजसे उसका मुख, यमके तेजसे केश-कलाप, विष्णुके तेजसे हाथ, चंद्रके तेजसे स्तन-युगल, इन्द्रके तेजसे कमर, वरुणके तेजसे जंघे, पृथ्वीके तेजसे नितम्ब, ब्रह्माके तेजसे दोनों चरण, सूर्यके तेजसे पदां-गुलियाँ, वसुओंके तेजसे करांगुलियाँ, कुबेरके तेजसे नासिका, प्रजापतिके तेजसे दाँत, अग्निके तेजसे नेत्र-त्रय, संध्याके तेजसे भ्रू, वायुके तेजसे कान, और दूसरे-दूसरे देवताओंके तेजसे उसके शरीरकी नाड़ियाँ बनीं। उसे देख कर महिषासुर द्वारा पीड़ित देवगण बड़े आनन्दित हुए। उसके पश्चात् देवताओंने देवीको अपने-अपने अस्त्रोंमेंसे एक-एक अस्त्र प्रदान किया। महादेवने शूल, भगवान श्रीकृष्णचन्द्रने चक्र, वरुणने शङ्ख, अग्निने शक्ति, वायुने धनुष, इन्द्रने वज्र और घंटा, यमराजने गदा, वरुणने पाश, प्रजापतिने अक्ष-माला, ब्रह्माने कमण्डलु, सूर्यने देवीके समस्त रोम-कूपोंमें अपनी रश्मि, कालने खड्ग और ढाल, क्षीर-सागरने निर्मल हार, अजर वस्त्र, चूड़ामणि, कुण्डल चिबुक, अर्द्धचन्द्र, समस्त हाथोंमें कंगन, चरणोंमें नूपुर और अँगुलियोंमें अँगुरियाँ प्रदान किये। फिर विश्वकर्माने परशु और अनेक प्रकारके अस्त्र समुद्रने कभी भी मलीन न होनेवाली पद्ममाला, हिमालयने वाहन-सिंह और अनेक प्रकारके रत्न, कुबेरने सुरापानके लिये पात्र, समस्त नागोंके अधिपति शेषदेवने महामणि-विभूषित नागहार प्रदान किये। दूसरे-दूसरे देवताओंने भी विविध-प्रकारके आभूषण और अस्त्र-शस्त्र प्रदान किये। समस्त देवताओंका सम्मान प्राप्त होकर देवीने जोरोंका अट्टहास किया, जिससे सम्पूर्ण आकाश गूँज उठा और भयङ्कर प्रति-ध्वनि हुई। सब लोग डर गये। पृथ्वी डगमगाने लगी, पर्वत विचलित हो गये। समुद्र प्रकम्पित हो उठा। उस समय देवगण आनन्दित होकर जयध्वनि करने लगे और मुनिगण भक्तिपूर्वक स्तुति करने लगे। सबको डरते देख कर दानव लोग अस्त्र-शस्त्र धारण कर उठ खड़े हुए। महिषासुरको तो क्रोधका ठिकाना न रहा। वह अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित होकर दानवी सेनाके साथ उसी शब्दकी दिशामें दौड़ा। निकट पहुँचने पर उसने अपने दिव्य अंगोंकी ज्योतिसे सम्पूर्ण लोकोंको व्याप्त करनेवाली देवीका दर्शन किया। उन देवीके चरणोंके भारसे पृथ्वी झुकी हुई थी।

देवीने महिषासुरको युद्धके लिये आया देख कर अपने धनुष पर भीषण टंकार किया और अपने हजार-हजार हाथोंमें अस्त्र-शस्त्र लेकर युद्धके लिये प्रस्तुत हो गयीं। यह देख कर महिषासुरने देवीके ऊपर प्रचण्ड रूपसे आक्रमण किया। भीषण युद्ध आरम्भ हो गया। दूसरे-दूसरे समस्त दैत्योंकी सहायता करने लगे।

उस भयङ्कर संग्राममें उदग्र नामक असुर छाठ हजार असुर योद्धा, महाहनु दस हजार असुर योद्धा, असिलोमासुर पचास लाख आसुरी सेना और बाष्कल साठ लाख सेना, असंख्य हाथी, घोड़े और रथोंसे सुसज्जित होकर युद्ध करने लगे। बिड़ाल नामक असुर पाँच लाख और स्वयं महिषासुर करोड़ों दानवोंके साथ तोमर, भिन्दिपाल, शक्ति, मूषल परशु, पट्टिश आदि अस्त्रोंके द्वारा देवीपर भीषण रूपसे प्रहार करने लगा। इधर देवीने भी भयङ्कररूप धारण किया और खेलमें ही दानवोंके सारे अस्त्रोंको खण्ड खण्ड कर दिया। देवीका वाहन सिंह भी जङ्गलमें आगकी भाँति असुर-सैन्यमें प्रवेश कर संहार करने लगा। देवीके निश्वाससे सैकड़ों योद्धा आविर्भूत होकर देवीकी शक्तिसे परशु, भिन्दिपाल, खड्ग आदि द्वारा असुरोंका संहार करने लगे। देवता लोग भी पटह, शंख, मृदङ्ग आदि वाद्योंकी ध्वनि करते हुए आनन्द प्रकाश करने लगे। देवी भी त्रिशूल, गदा, शक्ति और तलवारसे असुरोंका संहार करने लगीं। कोई-कोई मूषलकी चोटसे खून उगलने लगे, कोई-कोई शूलसे विद्ध होकर कटे हुए पेड़की भाँति गिरने लगे। किसीका हाथ कटा, किसीका पैर कटा, किसीकी गर्दन और किसीकी कमर कटी। चारों ओर भयङ्कर मार-काट मच गयी। रक्तकी महानदी प्रवाहित होने लगी। अम्बिका देवीने क्षण भरमें ही दानवी सेनाको वैसे ध्वंस कर दिया जैसे घासकी विराट ढेरीको आग जला देती है। देवीका सिंह भी अपने केशोंको हिलाता हुआ अपने भयङ्कर गर्जनसे असुरोंको भयभीत कर दिया।

अपनी सेनाकी इस प्रकार दुर्दशा देखकर असुराधिपति महिषासुर देवीके साथ युद्ध करने लगा। जिस प्रकार जोरोंकी वर्षासे पर्वत शिखर ढक जाता है, उसी प्रकार असुरराजने अपने पैने बाणोंसे देवीको आच्छादित कर दिया। परन्तु देवीने क्षणभरमें महिषासुरके धनुष और रथको काट डाला। तब वह असुर पैदल ही ढाल और तलवार लेकर देवी पर झपटा तथा उसके दाहिने हाथ एवं सिंहके मस्तक पर प्रहार किया। परन्तु देवीके हाथके स्पर्शसे ही उसका खड्ग टूटकर टुकड़ा-टुकड़ा हो गया। फिर उसने देवी के ऊपर त्रिशूल फेंका, परन्तु वह त्रिशूल भी पूर्ववत् खण्ड-खण्ड हो गया। अब वह हाथी पर चढ़कर देवीपर शक्तिसे प्रहार किया। परन्तु वह शक्ति भी देवीके हुंकारसे नीचे गिर पड़ी। इसी समय सिंहने बड़े जोरसे गरज कर हाथीसे मस्तक पर प्रहार किया और उसे मार डाला। इधर देवीने भी अपने विकराल धनुषसे चारिफल, महाहनु और बिड़ाल आदि दानवोंको मार डाला।

इस प्रकार अपनी सेनाका विनाश देख कर महिषासुरने महिष (भैंस) का रूप धारण किया और किसी-किसीको अपने खुरसे, किसी-किसीको अपनी जीभसे, किसीको पूँछसे और बहुतोंको अपने सिंगोंसे मारने लगा। इस प्रकार जब वह सिंहको मारनेके लिये प्रस्तुत हुआ तब देवी बड़ी क्रोधित हुईं। महिषासुरने भी क्रोधित होकर खुर द्वारा भूमिको क्षुब्ध कर और सिंगसे पर्वतोंको हिलाकर घोर गर्जन करने लगा। उसके भीषण गर्जनसे पृथ्वी व्याकुल हो गयी, पूँछकी चोटसे समुद्र प्लावित होने लगा, सींगोंकी चोटसे मेघ खण्ड-खण्ड होने लगे तथा श्वासवायुसे पर्वतसमूह उड़-उड़कर आकाशसे गिरने लगे। ऐसा देख कर देवीने क्रोधित होकर पाशसे बाँध दिया। परन्तु असुरने महिषरूप छोड़कर सिंहका रूप धारण कर लिया। इस पर देवी जितने ही बार उसका सिर काटने लगी वह उतने ही बार मनुष्य आकारमें तलवार धारण करके खड़ा हो जाने लगा। फिर देवी अपने तीक्ष्ण बाणोंसे उसे बिंध देने पर वह फिर हाथीका रूप बना लिया और सिंहको अपने सूँड़से पकड़ कर खिंचने लगा। देवीने हाथीका रूप धारण किये हुए महिषसुरको बाणोंसे बिंध डाला। तब वह मायावी दानव पुनः महिषरूप धारण कर दिया। इसी बीच जगन्माता अत्युत्तम मधुपान करने लगी; तब अपनी बीरताके अभिमानमें

मत्त महिषासुर भीषण गर्जन करने लगा और अपने सिंगोंसे पर्वत उखाड़ कर देवीके ऊपर फेंकने लगा। देवीने अपने बाणोंसे उन पर्वतोंको चूर्ण-विचूर्ण करते हुए कहा—दुष्ट ! तू क्षण भर तक और भी गर्जनकर ले, जब तक मैं मधुपान समाप्त न कर लूँ। मैं अभी तेरा विनाश करने पर देवता लोग आनन्दसे गर्जन करेंगे। ऐसा कहकर देवी उठकर अपने चरण-कमलोंसे असुरके शरीर पर आघात किया और साथ ही उसकी गर्दन पर त्रिशूलसे प्रहार दिया। उस प्रहारको वह सह न सका। वह कुछ क्षणके लिये पृथ्वी पर गिरपड़ा। परन्तु वह उठकर युद्ध करने लगा। इस बार देवीने क्रोधित होकर अपनी तलवारसे उसके सिरको धड़से अलग कर किया। मस्तक रहित उसका शरीर कटे हुए पेड़के समान पृथ्वी पर गिरपड़ा। दैत्यराजको इस प्रकार मरते देखकर दानवगण हाहा-कार कर उठे और देवगण आनन्दित होकर जयध्वनि करने लगे। पश्चात् देवता लोग और महर्षिगण एक साथ मिलकर देवीका स्तव करने लगे। उस समय गन्धर्व गाने लगे तथा अप्सराएँ नृत्य करने लगी। स्तुतिमें देवीकी महिमा वर्णनप्रसंगमें एक अतिस्तुति पायी जाती है—

यस्याः प्रभावमतुलं भगवाननन्तो
ब्रह्मा हरश्च नहि वक्तुमलम्बलञ्च।
सा चण्डिकाखिल जगत् परिपालनाय
नाशाय चाशुभयस्यमतिं करोतु ॥४।४॥
हेतुः समस्त जगतां त्रिगुणापि दोषै-
र्न ज्ञायसे हरिहरादिभिरप्यपारा।
सर्वाश्रयाखिलमिदं जगदंशभूतं
अव्याकृता हि परमा प्रकृतिस्त्वमाद्या ॥४।७॥

चण्डी मार्कण्डेय पुराणके अन्तर्गत है। मार्क-ण्डेय पुराण राजसिक पुराण है। सात्त्विक पुराणोंके अतिरिक्त राजस और तामस पुराण-समूह थोड़ा या बहुत मोहित करनेके लिये प्रकाशित हैं। सात्त्विक पुराण मोक्षद हैं, राजस पुराण स्वर्गप्रद हैं एवं तामस पुराण नरकप्रद हैं—ऐसा महादेवजीकी उक्ति हैं। अतएव सुधी व्यक्तिगण एकमात्र सात्त्विक पुराणोंका अवलम्बन करके भगवान विष्णुका माहात्म्य जान कर उनके चरणकमलोंका भजन करेंगे। ऐसा होने पर ही यथार्थ कल्याणको प्राप्त हो सकेंगे।

उपसंहारमें वक्तव्य यह है कि सिंह-वाहिनी महि-षासुरमर्दिनी देवी समस्त देवताओंके मिलित तेजः स्वरूप हैं अर्थात् उनकी सम्मिलित शक्तिके रूपमें देवीका वर्णन रहने पर भी विष्णुमाया विष्णुके ही अधीन हैं। शक्ति सर्वदा शक्तिमानके अधीन तत्त्व है। शक्तिमानके अभावमें शक्तिकी कोई सामर्थ्य नहीं है। जैसे कोई यह कहे कि—'कुल्हाड़ीने पेड़को काट दिया', तो इसका तात्पर्य यह है कि किसी प्राणीने (चेतन वस्तुने) ही कुल्हाड़ी द्वारा पेड़को काटा है; क्योंकि केवल कुल्हाड़ी पेड़को काटनेमें असमर्थ है। उसी प्रकार शक्तिमानकी प्रेरणाके बिना शक्ति कोई भी कार्य करनेमें स्वतन्त्ररूपसे समर्थ नहीं है। इसलिये उक्त देवी-स्तुतिको 'अर्थवाद' समझना चाहिए। राजस प्रकृतिवाले व्यक्ति उससे मोहित रहने पर भी उससे निर्गुण वैष्णवगणके हृदयमें विष्णु-पादपद्मोंका माहात्म्य ही चिर जाग्रत रहता है।

—त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्तिभूदेव श्रौती महाराज

श्रीसूत-शौनक संवाद

(भागवत-कथा)

जिस समय नैमिषारण्यमें श्रीशौनकादि मुनि भगवत्प्राप्तिकी इच्छासे सहस्र वर्षोंमें पूरा होनेवाला यज्ञ कर रहे थे, उसी समय भगवान् श्रीकृष्ण यादवों के साथ अपनी भौमलीला समाप्तकर अन्तर्ध्यान हो गये। तत्पश्चात् पाण्डव भी परमधामको गमन किये। उस समय संसारमें कलिका प्रभाव धीरे-धीरे फैलने लगा। फिर अभिमन्युनन्दन श्रीपरीक्षित महाराज भी कुछ दिनोंके पश्चात् अन्तर्द्धान हो गये। फिर क्या था, कलिका प्रभाव पूर्णरूपसे फैल गया। उस समय शौनकजीने देखा कि ब्राह्मणों और सज्जन लोगोंमें आश्रमोंमें, जप, तप, ज्ञान, वैराग्य एवं यज्ञादिके स्थानोंमें कलिने प्रवेश किया है। उसके साथ हिंसा, दम्भ, मोह, मद, मात्सर्य, लोभ, चोरी तथा मिथ्या आदि भी प्रविष्ट हैं। अब ब्राह्मण लोग दैन्य, दया, क्षमा एवं मानराहित्य आदि सद्गुणोंसे रहित होकर कलिसहचर हिंसा, दंभ और ईर्ष्या-द्वेष, आदि असद्गुणोंसे मोहित हो गये हैं। महाज्ञानी श्रीशौनकजी ने और भी देखा कि मनुष्यकी आयु अल्प हो गयी है। नाना प्रकारके रोग और शोकसे पीड़ित मानवका मन सत्कर्ममें नहीं लगता है।

महर्षि शौनकजी इस प्रकार कलिका प्रभाव देख कर मन-ही मन बहुत दुःखी हुए और भगवानसे मन-ही-मन प्रार्थना करने लगे—प्रभो! आप इन लोगोंकी रक्षा कीजिए। आज आपके मंगलमय श्रीचरण-चिह्नोंसे रहित होकर पृथ्वी बड़ी दुःखित हो गयी है। आपके दर्शनोंके अभावजनित विरहसे भक्तलोग भी बहुत ही क्लेश पा रहे हैं। देव! आपके एकान्त आश्रित उन मुनि और द्विजलोगोंका आप उद्धार कीजिए। आपके श्रीचरणकमलोंकी प्राप्तिके लिये ये यज्ञ कर रहे हैं।

परम करुणामय भगवानने मुनियोंकी प्रार्थना सुनकर मानों उनकी अभिलाषा पूर्ण करनेके लिये अपने भक्त श्रीसूतगोस्वामीको वहाँ भेजा। श्रीसुत गोस्वामी 'हरे कृष्ण, गोविन्द, राम, नारायण, केशव, कलिमलहारी—इत्यादि मधुर नामोंका मधुर स्वरसे कीर्तन करते-करते उस यज्ञस्थलीमें पधारे। नैमिशवासी मुनिलोग उनके दर्शनोंसे तथा उनके मधुर श्रीनामसंकीर्तन-श्रवणसे परमानन्दित हुए तथा उनको बैठनेके लिये उत्तम आसन आदि देकर सत्कार किये। इसके पश्चात् एक दिन शौनक आदि ऋषियोंने प्रातःकाल अग्निहोत्र आदि नित्य-कृत्योंसे निवृत्त होकर सूतजीका पूजन किया और उन्हें ऊँचे आसनपर बैठाकर बड़े आदरसे इस प्रकार कहा—

तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
भगवत्सङ्गिसङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः॥
(श्रीमद्भा० १।१८।१३)

अहो! श्रीहरिदासानुदासोंके संगकी महिमाका कौन वर्णनकर सकता है? उनके क्षणमात्रके सङ्गकी तुलनामें राज्यपदकी तो बात ही क्या है, स्वर्ग या मोक्षका पद भी अतीव तुच्छ है। सौम्यस्वभाव सूतजी! आप युग-युग जीयें क्योंकि मृत्युके प्रवाहमें पड़े हुए हमलोगोंके निकट भगवान्की अमृतमयी उज्ज्वल कीर्त्ति—श्रीकृष्णनामामृतका गान करते-करते आये हैं। हे सौम्य! हमलोगोंको आज श्रीहरिनाम कीर्तन श्रवणसे जो आनन्द मिला है, वैसा आनन्द इतने

समय तक यज्ञ करनेपर भी प्राप्त नहीं हो सका है। हे साधो! अब आप हम लोगोंको श्रीगोविन्दकी पवित्र लीला-कथारूपी अमृतका पान कराकर सुखी कीजिए तथा संसार-सिन्धु पार करनेका मार्ग बताइए। हे सौम्य! आप भगवान वासुदेवकी कृपासे इतिहास पुराणादि शास्त्रोंके सम्पूर्ण ज्ञाता हैं। वेद-वेत्ताओं में श्रेष्ठ भगवान् बादरायणने एवं दूसरे तत्त्वदर्शी मुनियोंने जो कुछ जाना है—उन्हें जिन विषयोंका ज्ञान है, वह सब आप वास्तविक रूपमें जानते हैं। आपका हृदय बड़ा ही सरल और शुद्ध है। इसीसे आप उनकी कृपा और अनुग्रहके पात्र हुए हैं। गुरुजन अपने प्रेमी शिष्यको गुप्तसे गुप्त बात भी बता दिया करते हैं। इसके अतिरिक्त श्रीगुरु-सेवा परायण शिष्य के हृदयमें निगूढ़ भक्ति-तत्त्व स्वयं प्रकाशित होता है। हे सूतजी! आप कृपा करके यह बतलाइये कि—(१) कलियुगी जीवोंका एकमात्र कल्याण किसमें है? (२) परमात्मा श्रीहरिको प्रसन्न करनेके लिये सर्वश्रेष्ठ उपाय क्या है? (३) भगवान् श्रीकृष्णने इस धराधाम में अवतीर्ण होकर क्या-क्या लीलाएँ की हैं? श्रीहरि के दूसरे-दूसरे मधुर चरित्रोंसे युक्त अवतारोंकी लीला-कथाओंका श्रवण कराइये। (४) श्रीहरिका यश और उनकी उदार लीलाओंका भी श्रवण करावें। (६) भगवान् श्रीकृष्णजीके स्वधाम गमनके पश्चात् धर्मने किसकी शरण ली है? इन छः प्रश्नोंका उत्तर प्रदान कर हमें कृतार्थ करें।

श्रीशौनकादि ऋषियोंके ये प्रश्न सुनकर श्रीसूत गोस्वामी बड़े ही आनन्दित हुए। उन्होंने ऋषियोंके इस मङ्गलमय प्रश्नका अभिनन्दन करके कहा—अहो! आज मैं धन्य हुआ। मैं शूद्रकुलमें जन्म ग्रहण करके भी आपलोगोंको और भक्तिरसके परम रसज्ञ श्रीशुकदेवजीकी कृपा पाकर धन्य हूँ। मेरा जीवन धन्य हो गया, भागवत जनोंके श्रीचरणाश्रय मात्रसे मनुष्य के सब प्रकारके पाप दूर हो जाते हैं जैसे पारसमणि के स्पर्शसे लोहा भी स्वर्ण बन जाता है। हे शौनक! आप परम धन्य हैं। श्रीभगवान्‌की लीला-कथाओंसे पूर्ण अमल पुराण श्रीमद्भागवतकी कथाओंका श्रवण और कीर्तन करनेवाले दोनों ही परम सौभाग्यवान हैं। इससे बढ़कर परमधर्म और कुछ भी नहीं है। इससे भलीभाँति आत्मशुद्धि हो जाती है। इससे भगवानके चरणोंमें अहैतुकी प्रीति हो जाती है, यही मनुष्योंका सर्वश्रेष्ठ धर्म है—

स वै पुंसां परोधर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे।
अहैतुक्यप्रतिहता ययाऽऽत्मा सम्प्रसीदति॥
(श्रीमद्भा० १।२।६)

—मनुष्योंके लिये सर्वश्रेष्ठ धर्म वही है, जिससे भगवान श्रीकृष्णके चरणकमलोंमें भक्ति हो—वह भक्ति ऐसी हो जिसमें किसी प्रकारकी कामना न हो—अहैतुकी हो तथा जो अप्रतिहता अर्थात् नित्य-निरन्तर बनी रहे। ऐसी भक्तिसे हृदय आनन्दस्वरूप परमात्माकी उपलब्धि करके कृतकृत्य हो जाता है।

ऋषियों! सर्वाराध्य, सर्वाध्यक्ष परमेश्वर श्रीहरि-की जिन्होंने सेवा नहीं की तथा उनकी पवित्र कथाओं के प्रति जिन मनुष्योंके हृदयमें अनुराग उदय न हो, तो उनको अपने वर्णाश्रम धर्मका भलीभाँति पालन करनेपर भी नरकसे छुटकारा नहीं मिल सकता है।

तत्त्वविद अद्वयज्ञान अधोक्षज श्रीभगवानको परम तत्त्व कहते हैं। उसीको कोई ब्रह्म, कोई परमात्मा और कोई भगवान् नामसे पुकारते हैं। इस परमतत्त्व का अपूर्ण प्रतीति ब्रह्म है, आंशिक प्रतीति परमात्मा हैं तथा पूर्ण प्रतीति श्रीभगवान हैं। इन त्रिविध प्रतीतिओंके त्रिविध उपासक है; वे तीन हैं—ज्ञानी, योगी और भक्त। ज्ञानी ब्रह्मकी उपासना करते हैं, योगी परमात्माकी और भक्त भगवानको।

उपरोक्त परतत्त्वके त्रिविध स्वरूपोंमें भगवद्स्वरूप ही सर्वोत्तम रसमय तथा लीलामय स्वरूप हैं। वह भगवत्स्वरूप स्वयं कृष्ण ही हैं—'कृष्णस्तु भगवान्

स्वयम्' । श्रीकृष्णकी भक्तिसे ही सर्वविध धर्मसिद्धि होती है । अनादिकालका अविद्या-बन्धन भी जिनके नाम मात्रके उच्चारणसे दूर हो जाता है, उन भक्त-वत्सल दीनदयाल प्रभुकी लीला-कथाओंमें कौन अनुरक्त नहीं होगा ? श्रीसूत गोस्वामी इस प्रकारसे भगवतत्त्व कहते २ प्रेममें विभोर हो गये । फिर क्षण-भर तक चुप रहनेके पश्चात् पुनः प्रेमाश्रु बहाते-बहाते बोले---शौनकजी ! मैंने करुणावारिधि परमाराध्य देव श्रीशुकमुनिसे निखिल श्रुतिसार अध्यात्म दीप-स्वरूप श्रीमद्भागवत नामक जो पुराण श्रवण किया है, उसीका मैं कीर्तन कर रहा हूँ । उन सर्वगुह्योत्तम भागवती कथाका क्षणभर भी श्रवण करनेसे मनुष्य को सब प्रकारकी सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं ।

---श्रीहरिकृपादास 'भक्तिशास्त्री'

ऐसैंहिं जनम बहुत बौरायौ

ऐसैंहिं जनम बहुत बौरायौ ।
बिमुख भयौ हरिचरण कमल तजि, मन संतोष न आयौ ॥
जब-जब प्रकट भयौ जल-थल मैं, तब-तब बहु वपुधारे ।
काम-क्रोध मद-लोभ मोह बस, अतिहि किए अघ भारे ॥
नृग, कपि, विप्र, गीध, गनिका, गज, कंस केसि खल तारे ।
अघ बक वृषभ बकी धेनुक हति, भव जलनिधि तै उबारे ॥
संखचूड़ मुष्टिक प्रलंब अरु तृनावर्त संहारे ।
गज चानूर हते दव नास्यौ, व्याल मथ्यौ भय हारे ॥
जन दुख जानि जमल द्रुम भंजन, अति आतुर ह्वै धाए ।
गिरिकर धारि इन्द्र मद मर्द्यौ, दासनि सुख उपजाए ॥
रिपु कच गहत द्रुपद तनया जब सरन-सरन कहि भाषी ।
बढ़े दुकूल ओट अंबर लौं, सभा माँझ पति राखी ॥
मृतक जिवाइ दिये गुरुके सुत, व्याधि परम गति पाई ।
नन्द बरुन बन्धन भय मोचन, सूर पतित सरनाई ॥

प्रचार-प्रसंग

श्रीश्रीराधाष्टमी

गत १ आश्विन, १८ सितम्बर, सोमवारको समस्त शक्तियोंकी मूल अंशिनी महाभाव स्वरूपा श्रीश्रीराधा रानीकी आविर्भाव तिथि श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें बड़े धूम-धामके साथ मनायी गयी है। ऊषा कीर्तनके पश्चात् त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्तनारायण महाराजने श्रीचैतन्य चरितामृत ग्रन्थसे श्रीमतीराधिकाजीका प्रसंग पाठ किया तथा श्रीराधा तत्त्वके सम्बन्धमें मार्मिक विवेचन प्रस्तुत किया। शामको एक सभाका आयोजन किया गया जिसमें श्रीपाद हरिदास ब्रजवासी, "सेवा कौस्तुभ", श्रीपाद कुञ्जविहारी ब्रह्मचारी 'सेवा-कोविद', श्रीपाद रसिक-मोहन ब्रह्मचारी और अन्तमें भागवत पत्रिकाके सम्पादक महोदयने श्रीराधा तत्त्वके सम्बन्धमें भाषण दिये। दोपहरमें विशेषरूसे भोगराग संम्पन्न हुआ और उपस्थित सबको महाप्रसाद वितरण किया गया।

श्रीश्रीमद्भक्ति विनोद ठाकुरकी अविर्भाव-तिथि

गत ५ आश्विन, २२ सितम्बर, शुक्रवारको समितिके सभी मूल एवं सभी शाखामठोंमें आधुनिक जगत्में श्रीचैतन्यमहाप्रभु द्वारा प्रचारित विशुद्धभक्ति —प्रेमधर्मको पुनः प्रबलरूपमें प्रचार करनेवाले जगद्-गुरु श्रीसच्चिदानन्द भक्ति विनोद ठाकुरकी आविर्भाव तिथि मनायी गयी है। श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ मथुरामें उक्त दिवस शामको एक सभाका आयोजन किया गया था, जिसमें वक्ताओंने श्रीश्रीमद्भक्ति विनोद ठाकुरकी शिक्षाओं तथा उनके अतिमर्त्य चरित्र के ऊपर प्रकाश डाले। इस महात्माने विभिन्न भाषाओंमें विशुद्ध वैष्णव-विचार धारा (वैष्णव धर्म) के सम्बन्धमें सैकड़ों ग्रन्थ लिखे हैं तथा भारत और भारतके बाहर उन विचारोंको फैलाया है। बंगलाभाषामें इनके लिखे हुए प्रसिद्ध ग्रन्थ "जैवधर्म" का हिन्दी भाषामें (श्रीभागवत पत्रिका द्वारा) अनुवाद हो गया है, वह शीघ्र ही प्रकाशित होने जा रहा है। इसी ग्रन्थने आधुनिक वैष्णव जगतमें क्रान्ति ला दी है।

भारत-परिक्रमा—

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति प्रति वर्ष किसी धाम में ही कार्त्तिक-व्रत, दामोदर-व्रत या नियम-सेवाका पालन करती है। इस वर्ष इस अवसर पर भारत परिक्रमा—भारतके प्रधान-प्रधान तीर्थोंकी परिक्रमा और दर्शनोंकी व्यवस्थाकी गयी है। इसमें तीन धामों और सप्त पुरियोंका भी दर्शन किया जायगा।

इसके अनुसार गत ३ अक्टूबरसे रीजर्व ट्रेनसे हावड़ा स्टेशनसे यात्रा निकल चुकी है जो अब तक विष्णुपुर, पुरी, सिंहाचलम, कसुर (राजमहेन्द्रीके पास राय रामानन्द और श्रीमन्महाप्रभुजीका मिलन क्षेत्र), मङ्गलगिरि और मद्रासके तीर्थ स्थानोंका दर्शन सम्पन्न कर चुके हैं। इस यात्राके साथ समितिके प्रतिष्ठाता एवं आचार्य परमहंस-मुकुटमणि परिव्राजकाचार्य १०८ श्रीश्रीमद्भक्ति प्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज बहुतसे साधु-सन्त, भक्त और सज्जन मण्डलीके साथ हैं। यह मण्डली मद्राससे रामेश्वर कन्याकुमारी, बम्बई, द्वारका आदि होते हुए अगले १५ नवम्बरको श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ मथुरा में पधारेगी तथा २१ नवम्बर तक यहाँ रहकर पुनः दिल्ली हरद्वार अयोध्या, प्रयाग काशी और गया आदिका दर्शन करती हुए हावड़ाको लौट जायेगी। यहाँ पधारने पर श्रीश्रीआचार्य देव एवं दूसरे दूसरे त्रिदण्डी संन्यासी महाराज लोगोंके भाषणों और प्रवचनोंकी विशेष व्यवस्था होगी। महोदयोंसे प्रार्थना है कि वे इससे लाभ उठावेंगे।

———

श्रीभागवत पत्रिकाके सम्बन्धमें—

लोकालोक (मासिक) देहली (संस्थापक—शास्त्रार्थ महारथी श्री पं० माधवाचार्य शास्त्री)—

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, कंसटीला मथुरासे प्राप्य (श्रीभागवत पत्रिका)। अनेक महामहिम त्रिदण्डि महानुभावोंके सम्पादकत्वमें छः वर्षसे प्रकाशित होने वाली इस पत्रिकाको यदि भगवद् भक्ति रसकी अपूर्व मन्दाकिनी कहा जाए तो यह अतिशयोक्ति न होगी। भावुक भक्तोंको इसे पढ़कर अपने कल्याण-मार्गको अवश्य परिष्कृत करना चाहिए।

श्रीगौड़ीय व्रतोपवास [कार्त्तिक]

२५ पद्मनाभ,	२	कार्त्तिक,	१६	अक्टूबर,	बृहस्पतिवार—श्रीमध्वाचार्यका आविर्भाव या शुभ-विजयोत्सव; श्रीदुर्गा पूजाका विसर्जन।
२६ ,,	३	,,	२०	,,	शुक्रवार—पाशांकुशा एकादशीका उपवास।
२७ ,,	४	,,	२१	,,	शनिवार—दि० ८।५७ के पहले एकादशीका पारण; द्वादशीसे आरम्भ करनेवालोंके लिये कार्त्तिक व्रत या दामोदर व्रत या नियम-सेवा आरम्भ; श्रीरघुनाथदास गोस्वामी, श्रीरघुनाथ भट्ट गोस्वामी एवं श्रीकृष्ण-दास कविराज गोस्वामीका तिरोभाव।
२६ ,,	६	,,	२३	,,	सोमवार—श्रीकृष्णकी शारदीया रासयात्रा, पूर्णिमासे आरम्भ करनेवालोंके लिये कार्त्तिक-व्रत, दामोदर-व्रत या नियम-सेवा आरम्भ; श्रीलक्ष्मीपूजा।
७ दामोदर,	१३	,,	३०	,,	सोमवार—श्रीनरोत्तम ठाकुरका तिरोभाव।
८ ,,	१४	,,	३१	,,	मंगलवार—बहुलाष्टमी, श्रीराधाकुण्डमें स्नान-दानादि महोत्सव; मतान्तरमें श्रीगदाधर गोस्वामीका तिरोभाव।
१० ,,	१६	,,	२	नवम्बर	बृहस्पतिवार—श्रीवीरचन्द्र प्रभुका आविर्भाव।
१२ ,,	१८	,,	४	,,	शनिवार—श्रीरमा एकादशीका उपवास।
१३ ,,	१६	,,	५	,,	रविवार—दि० ६।२४ के पहले एकादशीका पारण; श्रीनरहरि सरकार ठाकुरका तिरोभाव।
१४ ,,	२०	,,	६	,,	सोमवार—श्रीयमको दीपदान।
१५ ,,	२१	,,	७	,,	मंगलवार—शाक्त कृत्य-श्रीश्यामापूजा (दीपावली); मतान्तरसे दूसरे दिन दीपावली।
१७ ,,	२३	,,	६	,,	बृहस्पतिवार—श्रीगोवर्द्धन पूजा, अन्नकूट महोत्सव श्रीवृन्दावनदास ठाकुरका तिरोभाव एवं श्रीरसिकानन्द प्रभुका आविर्भाव।
१८ ,,	२४	,,	१०	,,	शुक्रवार—भ्रातृद्वितीया, यमद्वितीया; श्रीवासुदेव घोषका तिरोभाव।
२४ ,,	३०	,,	१६	,,	बृहस्पतिवार—श्रीगोपाष्टमी और गोष्ठाष्टमी।